प्राकृतिक दर्शन

दूसरा आयाम

लेखक संसारचन्द्र
मो0 : 8800598564, 8800901448
प्रथम संस्करण प्रकाशन वर्ष 1982, जयपुर, राजस्थान

भेंट पुत्री रेखा व्यास तथा संसार की समस्त स्त्री जाति को

द्वितीय संस्करण प्रकाशन वर्ष : २०१०
अभ्युदय प्रतिष्ठान
२०६, मुनीष प्लाजा,
अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली
सर्वाधिकार-लेखकाधीन

तीसरे संस्करण वर्ष २०१८ के प्रकाशन के आर्थिक सहयोगी, अनुज कौशिक

आर्थिक सहयोग राशि रूपये 1100/— मात्र

श्री संसारचंद्र की पुस्तक 'प्राकृतिक दर्शन' नायाब वैचारिक तथा दार्शनिक तोहफा है। जिससे हर कोई अपने जीवन यानी न केवल इहलौकिक वरन पारलौकिक जीवन तक को सुधार सकता है। मैं इसे श्री संसारचंद्र का दर्शन कहना ज्यादा पंसद करूंगी।

हमारे सम्बंधो की पारिवारिक जड़े हैं ढेठ उदयपुर, राजस्थान से। फिर भी जब इस पुस्तक और उने दर्शन से वाकिफ हुई तो उनके प्रति विशेष सम्मान भाव जागा। उनकी बौद्धिक सोच बेहद जनोपयोगी लगी। श्री संसारचंद्र प्रकृतिपरक जीवन के पक्षधर हैं। वे सम्पत्ति के अधिकार भी तद्नुसार चाहते हैं। वे विज्ञान व अध्यात्मक को साथ लेकर चलते हैं। वे यह मानते है कि सब संसार की रचना प्रकृति कर रही है तो वही उसका नियमन व नियंत्रण बेहतर तरीके से कर सकती है। वे इस बात पर जोर देते है कि यह विकास प्रकृति के विकास के अनुरूप होगा। कोई पेड या वृक्ष किंवा प्राकृतिक उपादान एक ही फल पैदा नहीं करता। न ही कोई एक चीज ही कि उससे उसका एकमात्र प्रतिनिधि ही हो। यही सिंद्धांत प्रकृति की रचना व रचित के मध्य उपयुक्त तालमेल बैठा सकता है।

श्री संसादचंद्र असीमित व्यक्तिगत उत्तराधिकार का सिद्धांत ठीक नहीं मानते वे ऐसा जगत चाहते है जिसमें समान भौतिक अवसर हों। वैचारिक-साम्पत्ति अधिकारों के मलू में जो अहम् है (मेरी पत्नी, मेरे बच्चे, मेरा जंगल, मेरे हथियार, मेरा शिकार) जिसने भौतिक जीवन का रूप निर्धारित कर रखा है (बल्कि दबोच रखा है) इस पर व्यापक प्रकाश डाला है। अक्सर दर्शन तथा सिद्धांत थोपे रोपे जाते है। किसी तानाशाह के आदेश की तरह, परंतु संसारचन्द्र उनके औचित्स-अनौचित्य को व्यावहारिक रूप-स्वरूप को गुरूभाव से समझाते हैं।

सम्पत्ति के सीमित उत्तराधिकार की व्यावहारिक परिणति के गुण-दोष जानकर, हर कोई संसारचंद्र के दर्शन को जानना पंसद करता है।

श्री संसारचंद्र ने अपनी पुस्तक को रीडर फ्रेण्डली ही नहीं बल्कि लाइफ फ्रेण्डली बनाने के लिए खूब चिन्तन किया है। दुनिया में साम्पत्तिक दर्शन को लेकर जो जद्दोजहद चल रही है उस पर भी प्रकाश डाला है। १७७६ में एड्स स्मिथ ने राष्ट की सम्पत्ति पुस्तक लिखी जिससें पंजीवादी दर्शन का जन्म हुआ।

वैसे लोग पंजीवाद के नाम से नाक-भौं सिकोडते हैं पर श्री संसारचंद्र ने उसके साथ बहुत सहानुभूति रखी है। उसे राक्षसी और दैवी पूंजीवाद का दर्जा देकर हर रूप-स्वरूप से हमारा ताल्लुक कराया है। उन्होने समझाया कि दैवी पूंजीवादी समाज वंचित तबकों की ज्यादा मदद कर सकता है।

श्री संसारचंद्र ने दुनिया की तमाम विचारधाराओं का अध्ययन किया है। आर्थिक दर्शन को तो पूरा रचाया-बसाया है। साम्यवाद, मार्क्सवाद के परिप्रेक्ष्य में भी अपने आर्थिक व सामाजिक दर्शन पर प्रकाश डाला है। न केवल भारतीय संस्कृति प्रत्युत विश्व के सभी धर्म सम्प्रदायों के अपरिग्रह व सादगी के सर्वमान्य प्रचलित सिद्धांत का मन से स्वागत (इस्तकबाल) किया है। इसने इस पुस्तक की रेंज बढ़ा दी है। दानवीर कर्ण हो या हजरत मोहम्मद या राजा से त्यागी हुए महावीर तथा गौतम बुद्ध उन्होने इस सिद्धांत का वरेण्य बताया है।

कुल मिलकार अर्थ-दर्शन में जटिलता और चिंतन के चलते लोग ऐसी पुस्तकों से भागने लगते हैं पर इसमें इतिहास, मनोविज्ञान, धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र आदि तमाम विषयों और क्षेत्रों के अध्ययन का आस्वाद मिलता है। श्री संसारचंद्र का यह प्रकृतिवादी दर्शन नितांत उपयोगी जान पड़ता है। इससे न केवल महिला बन्कि राष्ट्रीय एवं वैश्विक समस्याओं के हल खोजे व निकाले जा सकते है। यही आज की मांग है। यदि कोई इसमें परिवर्तन-परिवर्द्धन भी चाहे तो उसकी भी गुंजाइश है।

संसार प्रकृति की रचना है यदि हम उसके अनुकूल अपने कर्म नहीं कर पाए तो यह उसके मूल सिद्धांतो के विपरीत होगा। जैसे आज की समस्या है, वह ही सुरसा ही तरह बढ़ेगी। उन्हे समय रहते रोकने में यह दर्शन महत्ती भूमिका निभा सकता है। भारत पुनः विश्व गुरू बन सकता है। क्योंकि हमारी आध्यात्मिकता में प्रकृति का अनुकूलन है। यह पुस्तक मुझे भेंट की गई मुझे इसकी प्रसन्नता है। इसलिए इनके पुस्तक सम्बन्धी कार्य निःशुल्क करके मुझे अपने कर्तव्य निर्वाहन का सुख मिलता है।

रेखा व्यास

अनुक्रमाणिका

1	मानव समाज की सही आर्थिक रूपरेखा
2	विकास के समान भौतिक अवसर
3	जीवन संघर्ष में योग्यतम की जीत
4	पूंजीवादी दर्शन का मूल आधार तथा भेद
5	मानव अधिकार आधारित व्यक्तिगत उत्तराधिकार
6	शारीरिक सुखों तथा मानसिक सुखों का भेद
7	वात्साल्य तथा मोह के भेद
8	दहेज की जननी उत्तराधिकर, उत्तराधिकर बनाम लाटरी या जुआ
9	उत्तराधिकार का सिंद्धात पुनर्जन्म तथा कर्मफल के विपरीत
10	व्यक्तिगत उत्तराधिकार समाप्त या सीमित करने की आवश्यकता
11	सम्पत्ति के व्यक्गित उत्तराधिकार की समाप्ति का कानून
12	सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार के दुष्परिणाम
13	उत्तराधिकार भ्रष्ट सामाजिक दर्शन
14	प्रकृतिवाद-सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार रहित पूंजीवाद
15	सम्पत्ति के स्वामित्व का प्राकृतिक स्वरूप
16	ऋग्वैदिक उत्तरवैदिक काल के प्रयासों का विवरण
17	मार्क्सवाद तथा साम्यवाद की भिन्नता
18	सत्कार्यवाद
19	भारतीय अध्यात्मवाद
20	पूंजीपतियों के लिए जीवन का सही तरीका
21	समान अधिकार के दर्शन के दुष्प्रभाव

मानव समाज की सही आर्थिक रूप रेखा

"अर्थात् सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार रहित पूंजीवाद"

समाज रचना प्राकृतिक सिद्धान्तों के अनुरूप होनी चाहिये

अनादि काल से मानव समाज में समस्याएँ उत्पन्न होती रही हैं और उन्हें सुलझाने के प्रयत्न भी किये जाते रहे हैं। मेरा यह प्रयास भी समस्याओं के मूल कारण ढूंढ कर उनके बारे में कुछ कहने का है। यह सभी जानते हैं कि ब्रह्माण्ड के क्रिया-कलापों का संचालन ईश्वर करता है, वैज्ञानिकों ने इसे प्रकृति का नाम दिया है। प्रकृति के नियम शाश्वत, सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक होते हैं। उन्हीं के अनुरूप सभी प्रकार के दर्शन, मान्यता, परम्परा, रीति-रिवाज, संविधान, कानून तथा समाज की रचना की जाती है। अखिल ब्रह्माण्ड में मानव का अस्तित्व तथा जीवन काल नगण्डय है। प्रकृति के नियमों को समझ कर उसके अनुरूप मानव समाज की रचना करने पर आदर्श तथा सुखी समाज की रचना सम्भव है।

समाज रचना हेतु प्रकृति के नियमों के विपरीत जाने पर मानव या समाज कभी सुखी नहीं हो सकता। ज्ञान के प्रकाश में प्रकृति के नियमों को समझ कर उसके अनुरूप मानव समाज की रचना करने पर आदर्श तथा सुखी समाज की रचना सम्भव है।

समाज रचना का पहला प्राकृतिक सिद्धान्त "विकास के समान भौतिक अवसर"

समाज रचना हेतु प्रकृति के नियमों को जानने के लिए यदि हम अपने चारों ओर एक समान्य दृष्टि डालें तो पाएंगे कि एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में जलवायु समान प्रकार की होती है। वहां प्रत्येक प्राणी को सर्दी, गर्मी, वर्षा तथा हवा आदि भौति सुविधाएं समान रूप से उपलब्ध होती हैं। इससे हम यह समझ सकते हैं कि प्रकृति अपनी तरफ से सभी जीवों को समान भौतिक अवसर" हुआ।

समाज रचना का दूसरा प्राकृतिक सिद्धान्त - "प्रकृति के अनुरूप विकास"

"विकास के समान भौतिक अवसर" यानी कि सर्दी, गर्मी, वर्षा, हवा इत्यादि समाज रूप से मिलने पर भी धरती पर जहां अमरूद का बीज पड़ा होता है वहां अमरूद का पेड़ हो जाता है तथा जहां आम की गुठली पड़ी होती है वहां आम का पेड़ हो जाता है। प्रकृति ने अमरूद व आम को अलग-अलग स्वाद व उपयोगिताएं दी हैं। अतः यह स्पष्ट है कि "विकास के समान भौतिक अवसर" मिलने पर भी प्राणी अपने प्राकृतिक गुणों के अनुरूप ही विकास करते हैं। इसी प्रकार सभी मनुष्य भी एक प्रकार के नहीं होते। विकास के समान अवसर मिलने पर भी वे जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों में बढ़ेंगे। उनके विकास की गति तथा सीमा भी उनकी प्रकृति यानि स्वभाव

तथा प्रतिभा के अनुसार अलग-अलग होगी। अतः समाज रचना का दूसरा प्राकृतिक सिद्धान्त "प्रकृति के अनुरूप विकास हुआ"

"समान भौतिक अवसर" के सिद्धान्त के अनुसार सम्पत्ति के व्यक्तिगत अधिकार का सिद्धान्त सही है पर व्यक्तिगत उत्तराधिकार का सिद्धान्त गलत है:-

मनुष्य प्रारम्भ में जंगल में रहता था। फिर उसमें बुद्धि का विकास हुआ, इससे उसका "अहम्" जागृत हुआ। अहम् के कारण मानव ने सोचा "मैं" कुछ हूँ। कालान्तर के बाद "मैं" की भावना के कारण मेरी पत्नी, मेरे बच्चे, मेरा समाज, मेरा जंगल, मेरा शिकार, मेरे हथियार तथा मेरी सम्पत्ति की भावना का विकास हुआ।

समाज रचना के प्रारम्भिक काल में जब मानव ने खेती करना शुरू किया था तब खेतों पर सारे समाज का अधिकार था, अर्थात् सम्पत्ति पर सामाजिक अधिकार था। व्यक्ति तो मरते हैं पर समाज नहीं मरता, अतः उत्तराधिकार का प्रश्न नहीं था। पर, प्राकृतिक रूप से कुछ व्यक्ति आलसी थे और कुछ मेहनती। सबको अपनी मेहनत के अनुसार उसका लाभ मिले तथा सभी को मेहनत करने की प्रेरणा मिले, इस उद्देश्य को लेकर खेती की सारी जमीन को खेतों के टुकड़ों में बांट दी गयी तथा उन पर अलग-अलग व्यक्तियों का व्यक्तिगत स्वामित्व मान लिया गया। इस प्रकार "सम्पत्ति के व्यक्तिगत अधिकार" की शुरुआत हुई।

स्त्री, पुरूष सम्पत्ति अर्जित करने में एक-दूसरे के जीवन साथी हैं। अतः दोनों में से एक के मरने पर दूसरे जीवन साथी को स्वाभाविक रूप से ही उसकी सारी सम्पत्ति का स्वामित्व प्राप्त हो जाना चाहिये। किन्तु ऐसे निकम्मे बच्चे भी होते हैं जो कि बाप के किसी प्रकार भी सम्पत्ति अर्जन में सहायक नहीं होते, उनको उत्तराधिकार में धन मिलना न्यायोचित नहीं। उदाहरणार्थ राजाओं, सामन्तों, धनी व्यापारी, बड़े किसान तथा उद्योगपतियों के बच्चे। ऐसे निकम्मे बच्चे पहले भी होते थे, परन्तु औद्योगिक क्रान्ति के बाद पूंजीवाद के विकास के साथ ऐसे निकम्मे बच्चों की संख्या बहुत ज्यादा बढ़ गई है जो कि माँ-बाप को सम्पत्ति अर्जन में सहयोग दिये बगैर ही केवल उपने रक्त सम्बन्धों के आधार पर उत्तराधिकार के गलत दर्शन तथा कानून के कारण बहुत सारा धन पा जाते हैं। यह सारी गड़बड़ी दार्शनिकों द्वारा समान भौतिक अवसर तथा समान भौतिक अधिकार के सिद्धान्तों के परस्पर विरोध न समझने तथा परिणामस्वरूप सम्पत्ति के अधिकार तथा उत्तराधिकार के भेद को ठीक से नहीं समझ पाने के कारण हुई।

अतः यह स्पष्ट है कि अनजाने में ही पाषाण युग में दार्शनिकों से उत्तराधिकार की सही व्याख्या नहीं दिये जाने की भयानक भूल हो गई। इसी कारण उत्तराधिकार के शोषक दर्शन का जन्म हुआ। उत्तराधिकार के गलत कानून बनाये गये तथा उत्तराधिकार की गलत परम्परा समाज के हर क्षेत्र में बुराई पैदा करने लगी। यह गलती पाषाण युग से आज तक सभी देशों में चली आ रही है।

समान अधिकार के गलत दर्शन के कारण उत्तराधिकार में गरीब परिवार के बच्चों को अमीर परिवार के बच्चों के मुकाबले में कम सम्पत्ति मिली। यानि विकास के कम भौतिक अवसर मिले। वयस्क होने पर भी अमीर का बच्चा तो उत्तराधिकार में धन मिलने से जीवन की दौड़ में आगे निकल गया, जबकि गरीब का बच्चा उत्तराधिकार में धन न मिलने से पिछड़ गया। यह सभी जानते हैं कि मां-बाप की गरीबी में बच्चों का कोई दोष नहीं होता फिर उन्हें उत्तराधिकार में समान सम्पत्ति देकर विकास के समान अवसर क्यों नहीं दिये जाते? अतः यह स्पष्ट है कि सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार का सिद्धान्त समाज रचना के प्रथम प्राकृतिक सिद्धान्त "विकास के समान भौतिक अवसर" के विपरीत है।

समाज रचना का तीसरा प्राकृतिक सिद्धान्तः "जीवन संघर्ष में योग्यतम की जीत":-

समाज रचना के लिये पहला प्राकृतिक सिद्धान्त यानि "प्रकृति के अनुरूप विकास" यद्यपि बहुत ही साधारण बुद्धि की बात है पर बड़े आश्चर्य की बात है कि दार्शनिक तथा विद्वानों ने उनका महत्व अब तक नहीं समझा। समाज रचना में उनका उपयोग किस प्रकार से हो इस बात का उल्लेख किसी भी साहित्य या दर्शन में नहीं मिलता। जहाँ कहीं भी इसका गोल-मोल तरीके से जिक्र आया है वहां भी सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार के मुद्दे के बारे में चर्चा नहीं की गई है, इसी कारण प्राचीन युग से आज तक समाज में इतनी गड़बड़ी हुई। इस पुस्तक को गंभीरतापूर्वक पढ़ने पर आहिस्ता-आहिस्ता यह सत्य स्पष्ट होता चला जायेगा। चार्ल्स डारविन ने मानव जाति को "सक्षम को ही जीने का अधिकार है" या दूसरे शब्दों में कहें तो "जीवन संघर्ष में योग्यतम की जीत" का सर्वमान्य सिद्धान्त दिया है। इस सिद्धान्त से यह स्पष्ट है कि प्रकृति सर्वोदय अथवा सबके भले के सिद्धान्त के विपरीत समाज के योग्य मानवों को आगे बढ़ाना चाहती है। मानव को सुखी रहने के लिए प्रकृति के अनुरूप ही चलना होगा। अतः पुत्र यदि कुपुत्र है, तो समझदार मानव अपने अयोग्य बेटे-बेटियों के बजाय समाज के अन्य योग्य बच्चों को अपनी सम्पत्ति उत्तराधिकार में देगा।

योग्यतम की जीत के सिद्धान्त के अनुरूप ऐडम स्मिथ ने सन् १७७६ में "राष्ट्रों की सम्पत्ति" की पुस्तक लिखी जिससे पश्चिमी पूंजीवादी दर्शन का जन्म हुआ।

पूंजीवादी दर्शन का मूल आधार तथा भेदः-

उस काल में आद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत हो चुकी थी। पश्चिमी देशों में पूंजीवाद जन्म लेकर तेजी से बढ़ रहा था। बिना किसी तर्क पर आधारित सीमाहीन धन-संचय का, पूंजीवाद का वह नग्न रूप बड़ा वीभत्य था। उसे अपना असली रूप ढंकने के लिए किसी कपड़े की आवश्यकता थी में अर्थात् पूंजीपति अपने धन-संचय को मजबूत नैतिक आधार देना चाहते थे

अतः पूंजीवाद को नैतिक आधार देने की हड़बड़ी में उस समय के विद्वानों ने घोषणा कर दी कि पूंजीवाद "जीवन संघर्ष में योग्यतम की जाति" के सिद्धान्त के अनुसार सही आर्थिक व्यवस्था है।

परन्तु विश्व की प्राचीन सभ्यताओं के लिए पूंजीवाद कोई नई चीज नहीं है। वास्तव में पूंजीवाद का आधार पहला प्राकृतिक सिद्धान्त विकास के समान भौतिक अवसर तथा दूसरा प्राकृतिक सिद्धान्त यानी प्रकृति के अनुरूप विकास है। समान अवसर मिलने पर कोई व्यक्ति अपनी निजी योग्यता, प्रतिभा, बल, हिम्मत, बुद्धि से चाहे जितना धन कमाये यह बात सही है। पर पाषाण युग से पहला प्राकृतिक सिद्धान्त यानि "समान अवसर" का महत्व न जानने के कारण मानव जाति में समान अधिकार के गलत दर्शन पर आधारित उत्तराधिकार को गलत दर्शन चला आ रहा है। फलस्वरूप उत्तराधिकार का यह गलत दर्शन औद्योगिक क्रान्ति से जन्मे पश्चिमी देशों के पूंजीवाद में भी ज्यों को त्यों घुस गया। अतः उत्तराधिकार के गलत दर्शन को यदि पूंजीवाद में से निकाल दिया जाये तो यह पहले तथा दूसरे प्राकृतिक सिद्धान्त के अनुरूप एक सही आर्थिक दर्शन बन सकता है। अतः प्राकृतिक आर्थिक दर्शन का हमारा यह मूल मंत्र "सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार रहित पूंजीवाद" हुआ।

इस रहस्य को ठीक से नहीं समझ पाने के कारण तीन प्रकार के पूंजीवाद दर्शन प्राचीन काल से ही समाज में विद्यमान है। इसमें पूंजीपति का समाज के प्रति दृष्टिकोण तथा सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार के प्रति उसकी मान्यता निर्णायक भूमिका अदा करती है।

१. राक्षसी पूंजीवाद (समान भौतिक अधिकार के गलत दर्शन पर आधारित)

समान भौतिक अधिकार के गलत दर्शन को मानने वाले व्यक्ति समाज हित की जरा भी परवाह न करते हुए तस्करी, डकैती, मिलावट,कालाबाजारी इत्यादि समाजद्रोही तरीकों से दिन-रात सीमा हीन धन-संचय में लगे रहते हैं। वे स्वभाव से क्रूर तथा अहंकारी होते हैं एवं भोग विलास में लिप्त रहते हैं। समान अधिकार के गलत दर्शन को मानने के कारण ये अपना सारा धन उत्तराधिकार में केवल अपने ही बच्चों को दे जाते हैं। उदाहरणतः रावण, कंस तथा "मर्चेन्ट ऑफ वेनिस" नामक पुस्तक का खलनायक महाजन शाईलाक आदि। ये लोग जीवन के हर क्षेत्र में "समान अधिकार" के सिद्धान्त को मानते हैं।

२. दैवी पूंजीवादः- (समान भौतिक अवसर के प्राकृतिक सिद्धान्त पर आधारित सही दर्शन)

समान भौतिक अवसर के दर्शन को मानने वाले व्यक्ति अपने विलक्षण ज्ञान, विज्ञान, प्रतिभा तथा सर्वोच्च स्तर की कला कौशल द्वारा धन का अर्जन करते हैं। वे अपने बच्चों में अच्छे संस्कार डालते हैं। उनकी शिक्षा, दीक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन इत्यादि का सर्वोच्च प्रबन्ध करते हैं पर उत्तराधिकार में उन्हें सम्पत्ति नहीं देते हैं। वे समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य को जानते हैं

इसीलिये सामाजिक सेवा करने वाली संस्थाओं तथा व्यक्तियों को अपनी सारी सम्पत्ति मरने पर वसीयत द्वारा दान कर देते हैं।

उदाहरणतः- सम्राट हर्षवर्धन, नोबुल पुरस्कार के लिये धन देने वाला नोबुल, कार्लमार्क्स को सहायता देने वाला पूंजीपति फ्रेडरिक एगेंल्स, महाराणा प्रताप को सहायता देने वाला धनिक भामाशाह, इस शताब्दी का महान दार्शनिक बर्टेड रसेल, जयपुर के डॉ. एस.सी. मेहता, भूतपूर्व चिकित्सा एवं स्वास्थ्य निदेशक, राजस्थान के सन् १९८० में जिन्होंने अपना सर्वस्व समाज को दे दिया। ये सब इसी परम्परा में आते हैं।

३. भ्रमित पूंजीवादः- समान भौतिक अधिकार तथा समान भौतिक अवसर के परस्पर विरोधी दार्शनिक दिशा को न समझने वाला भ्रमित मानव

वे व्यक्ति जिन्होंने धन तो अपने पुरुषार्थ से अर्जित किया पर जो समाज में पाषाण युग से चली आ रही समान भौतिक अधिकार पर आधारित व्यक्तिगत उत्तराधिकार की गलत परम्परा के कारण अपनी सारी सम्पत्ति केवल अपने बच्चों को ही दे जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को यदि धीरज से समझाया जाये तथा उन्हें उपयुक्त सुझाव दिया जाये तो वे निश्चय ही अपने धन का एक अंश समाज सेवा के काम में भी दे देंगे। पर फिलहाल अज्ञानतावश अपना सारा धन अपने बच्चों को ही देने की सोचते हैं। उत्तराधिकार में खूब सारा धन मिल जाने पर ऐसे व्यक्तियों की ज्यादातर सन्तानें बिगड़ जाती हैं। उत्तराधिकार में मिला धन ऐसे बच्चों को लाभ पहुंचाने की बजाय उनके लिये जहर हो जाता है। वे ज़हरीले इन्सान हो जाते हैं फिर वे अपना ज़हर जीवन-पर्यन्त समाज में फैलाते हैं। ऐसे बच्चों को चाहे जीवन की सारी भौतिक सुविधाएं मिल जायें, पर उनको जीवन का सुख नहीं मिलता। वह हमेशा दुःखी रहते हैं और समाज को भी दुःखी करते हैं। प्राकृतिक दर्शन का प्रमुख उद्देश्य ऐसे ही भ्रमित पूंजीवादियों के दिमाग से उत्तराधिकार के भ्रम को दूर करना है। उदाहरणतः- बिड़ला, टाटा, अन्य उद्योगपति व्यापारी परिवारों के सदस्य, सुप्रसिद्ध गायिका लतामंगेशकर, आंध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री रामाराव, सुप्रसिद्ध कलाकार दिलीप कुमार, संजीव कुमार, हेमामालिनी, जयाभादुड़ी, अमिताभ बच्चन, पूरी दुनिया मे भ्रमित पूंजीवाद के दायरे में अरबों लोग हैं पर हमने केवल उदाहरण के तौर पर उन्हीं नामों का उल्लेख किया है जिन्हें वर्तमान सन् १९८० में भारत के सभी प्रान्तों की जनता जानती है। टिप्पणी-जब कभी इस पुस्तक का अनुवाद अन्य भाषाओं में हो तो जिस क्षेत्र में उन भाषाओं को जानने वाले लोग रहते हों उन्हीं के क्षेत्र के भ्रमित पूंजीवादियों के उदाहरण दिये जायें।

विकास के समान अवसर का स्पष्टीकरण

सवाल यह उठ खड़ा होता है कि समाज में विकास के समान भौतिक अवसर का मतलब क्या है तो हम कहेंगे कि "गर्भावस्था से लेकर व्यस्क होने तक समाज के प्रत्येक बालक व बालिका को विकास के समान भौतिक अवसर मिलें"। ऐसे समाज की हम कल्पना करते हैं। यानि कि

गर्भावस्था में माँ को यथेष्ट भोजन व अन्य मानसिक व शारीरिक सुविधायें, जन्म के समय चिकित्सालय की सुविधा, बाद में उचित भोजन, शिक्षा, दीक्षा, चिसित्सालय की समान भौतिक सुविधाएं प्रत्येक बालक व बालिका को मिलें। वयस्क होने पर व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार रोजगार की गारन्टी सरकार द्वारा मिले, ऐसा समाज हम चाहते हैं।

यह एक आदर्शवादी कल्पना है पर असम्भव नहीं। थोड़ी देर के लिये अगर हम मान लें कि राज्य तथा समाज की अन्य संस्थाएं अपनी-अपनी जिम्मेदारी पूरी तरह निभाते हुए इस प्रकार के समाज का निर्माण कर भी देती हैं जहां प्रत्येक बालक व बालिका को विकास के समान भौतिक अवसर मिलें तो भी इस समाज में एक बड़ी गड़बड़ी रह जाती है। इस समाज में वह गड़बड़ी यह है कि गरीब तथा अमीर दानों वर्गों के नागरिकों के बच्चे जब बड़े होंगे तो अमीर के बच्चों को तो अपने माँ बाप से सम्पत्ति उत्तराधिकार के रूप में मिल जायेगी पर गरीब के बच्चों को उत्तराधिकार में कुछ भी नहीं मिलेगा या कर्ज ही मिलेगा। अमीर की सन्तान होने के कारण उसका बच्चा तो कर्म जीवन की शुरुआत में ही खेतों, कारखानों, खानों तथा व्यापार का मालिक बन बैठेगा जबकि गरीब की सन्तान होने के कारण दूसरा बच्चा उसके पास नौकरी करेगा और इस प्रकार उसका शोषण होगा। इस प्रकार समाज के दोनों बच्चों को उस जीवन काल में जबकि वे कमाना शुरु करते हैं, विकास के समान अवसर नहीं मिलते हैं। अतएव यह सत्य है कि मानव समाज में सम्पत्ति के उत्तराधिकार का सिद्धान्त प्रकृति के समान अवसर के सिद्धान्त के विपरीत है। हम सभी जानते हैं कि समाज की अधिकांश बुराइयां यानि भ्रष्टाचार, बेईमानी, धोखाधड़ी, दहेज, रिश्वत, चोरी, डाका, तस्करी इत्यादि धन के कारण ही होती हैं जिनके पास जितनी ज्यादा सम्पत्ति होती है जिसे कि वह कई पीढ़ियों तक बैठे-बैठे खा सकते हैं वे ही इन बुराइयों में लिप्त रहते हैं। गूढ़ मनन करने पर आप पाएंगे कि धन के कारण उत्पन्न हुई सभी प्रकार की बुराईयों का मूल कारण सीमाहीन धनसंचय है। वह धन जिसे मानव अपने आने वाली कई पीढ़ियों के ऐशो-आराम के लिये संचित करता है। अतः सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार का गलत दर्शन ही सभी गड़बड़ियों का मूल कारण है।

प्रकृति के समान अवसर का सिद्धान्त बनाम समान अधिकार के गलत सिद्धान्त पर आधारित मानव निर्मित उत्तराधिकार का सिद्धान्तः-

सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार का सिद्धान्त प्रकृति के समान अवसर के सिद्धान्त के अनुरूप नहीं है। इसलिये प्रकृति इसके खिलाफ काम करती रही है। जैसा कि हम इतिहास द्वारा जानते हैं कि मानव ज़ाति में कोई भी धनिक वंश या राज्य वंश चिरस्थाई नहीं रहा। ज़िनके पूर्वज धनवान थे आज ऐसे अनेकों गरीब मिल जायेंगे, हमेशा मिलते आये हैं। फिर आज के करोड़पति, लखपति, लोगों ने यह भ्रम क्यों पाल रखा है कि उनकी आने वाली पीढ़ी गरीब कंगाल नहीं हो पायेगी? इसीलिये हमारी पुरानी कहावत है -

"पूत सपूत तो क्यों धन संचे, और पूत कपूत तो क्यों धन संचे"

अतः हम सभी धनिकों से भी यही कहना चाहेंगे कि वे स्वयं इस बात पर मनन करें कि सम्पत्ति के उत्तराधिकार का सिद्धान्त प्रकृति के समान अवसर के सिद्धान्त के विपरीत होने के कारण अप्राकृतिक, असामाजिक, अमानवीय, अनैतिक तथा गलत है। लोगों को इस बात का अहसास होना चाहिये कि उनका यह अन्धविश्वास एवं मान्यता कि माँ-बाप की सम्पत्ति का एकमात्र वारिस उसकी सनतान है, समाज के अन्य बच्चे नहीं, गलत है।

हमें इस अन्धविश्वास एवं मान्यता को बदलने की दिशा में सोचना होगा लेकिन इससे पहले समाज के सभी बच्चों को सामाजिक संरक्षण तथा विकास के समान अवसर देने की पूरी गारंटी राज्य को देनी होगी। क्योंकि व्यक्ति अत्यधिक आर्थिक संकट एवं अकाल मृत्यु होने के भय के कारण ही अपने परिवार की आर्थिक सुरक्षा के लिये सीमाहीन धन संचय करता है। राज्य द्वारा ऐसी गारंटी की घोषणा एवं क्रियान्वयन होने के बाद समाज का बहुसंख्यक वर्ग सम्पत्ति के उत्तराधिकार को समाप्त करने की दिशा में सोचना शुरु कर देगा।

मानव अधिकार आधारित व्यक्तिगत उत्तराधिकार बनाम समान अवसर पर आधारित सामाजिक उत्तराधिकारः-

मानव जाति का विकास सामाजिक उत्तराधिकार के कारण हुआ है। हम अपने ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर ही आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं। जिस प्रकार मनुष्य के ज्ञान व अनुभव का लाभ पूरे समाज को मिलता है उसी प्रकार उसके द्वारा विरासत में छोड़ी गई सम्पत्ति का लाभ भी पूरे समाज को ही मिलना चाहिये। अतः हम समाज में व्यक्तिगत उत्तराधिकार को समाप्त करके या सीमित करके सामाजिक उत्तराधिकार के सिद्धान्त को मान्यता दिलवाना चाहते हैं।

शारीरिक सुखों तथा मानसिक सुखों में भेद :-

शारीरिक सुखों की सीमा होती है। जैसे कि एक व्यक्ति एक सीमा तक ही खाना खा सकता है, अच्छे वस्त्र पहन सकता है, अच्छे भवन में रह सकता है, पर मानसिक सुखों में संचय का सुख एक मर्यादा (सीमा) तक तो ठीक है पर मर्यादा के बाहर जाने पर वह विष बन जाता है। वास्तव में संचय की सीमा नहीं होती। जो व्यक्ति अपने मोहल्ले में सबसे धनवान है वह चाहता है कि गांव का सारा धन उसी के पास हो। फिर वह शहर का सारा धन समेटना चाहता है। अगर शहर का सारा धन उसे मिल जाता है तो, पूरे प्रान्त का धन, और फिर पूरी दुनिया का धन उसे चाहिये। इस प्रकार वह धन संचय में पागल हो जाता है।

प्राचीन काल में अत्यन्त ज्ञानी, बलवान और पुरुषार्थी रावण प्रकृति के इस नियम के विरुद्ध सीमाहीन धन संचय करने में लगा था। उसे समस्त विश्व के स्वर्ण व सुन्दरियों के संचय करने के लोभ ने पाप कर्म में धकेल दिया। उसका विनाशकारी परिणाम सभी जानते हैं। उत्तराधिकार में पूरा राज्य हड़पने की जिद कौरव कर बैठे। परिणामस्वरूप महाभारत युद्ध हुआ। राम का वनवास भी उत्तराधिकार के झगड़े के कारण हुआ। सम्पत्ति के उत्तराधिकार को समाप्त करने या मर्यादित (सीमित) करने का कानून बना देने पर तथा एक करोड़ रूपये से ज्यादा की सम्पत्ति पर प्रति वर्ष १० प्रतिशत लगाने पर धनिक व्यक्तियों के मन में छाया हुआ सम्पत्ति के संचय का अनावश्यक उन्माद समाप्त हो जायेगा। तब वह धन संचय के बजाय अपनी धर्मपत्नी, बाल-बच्चे, रिश्तेदार, मित्र, सहयोगी व समाज की ओर ध्यान देगा। तब वह महसूस करेगा कि उसके जीवन की सार्थकता समाज के शोषण करने में नहीं बल्कि समाज के लिये सदैव उपयोगी रहने में है।

वात्सल्य तथा मोह के भेदः-

सभी प्राणियों में अपने बच्चों के प्रति प्यार की भावना होती है। जब तक बच्चे वयस्क नहीं हो जाते तब तक उनकी देखभाल करना उन्हें आत्मनिर्भर बनाने का यत्न करना "वात्सल्य" है। किन्तु वयस्क होने पर भी बच्चों के भौतिक लाभ का यत्न करना "मोह" है। महाभारत युग में धृतराष्ट्र भी अपने पुत्र दुर्योधन के "मोह" में पड़ कर उसकी गलती होने पर भी चुप रहता था। इसी कारण महाभारत का युद्ध हुआ तथा पूरे कौरव-वंश का नाश हुआ। वर्तमान समय में भी राजसी पूंजीवादी लोग अपने वयस्क बच्चों के मोह में पड़ कर उनके लिये सीमाहीन धन संचय में जुटे हैं, ताकि उन्हें उत्तराधिकार में धन दे सकें।

दहेज की जननी उत्तराधिकारः-

उत्तराधिकार के गलत दर्शन से ही दहेज जैसी भयंकर सामाजिक कुप्रथा का जन्म हुआ। अचल सम्पत्ति का स्वामित्व व्यक्ति के पास होना भी गलत दर्शन है। विस्तार के लिये देखिये पृष्ठ-१४ पैरा-३। इस कारण व्यक्ति के मरने पर उसकी अचल सम्पत्ति उसके पुत्रों को मिलती है जो उसके पास ही रहते हैं तथा उसकी खेती एवं कारोबार में उसकी सहायता करते हैं। पुत्री विवाह होने पर अपने पिता के नहीं रहती वरन पति के घर रहती है। अतः उसको मैके की अचल सम्पत्ति का स्वामित्व देना व्यावहारिक नहीं क्योंकि मैके की अचल सम्पत्ति का स्वामित्व लड़की को मिलने पर भी उसका उपभोग वह नहीं करके भाई ही कर सकते हैं। इसलिये उसे विवाह के समय ही कुछ चल सम्पत्ति देने की व्यवस्था की गई। इसी सम्पत्ति को दहेज का नाम दिया गया। पहले दहेज देना अनिवार्य नहीं था। पर ज्यों ज्यों समाज में सम्पत्ति का लोभ बढ़ता गया त्यों त्यों वह

दहेज विवाह का अनिवार्य अंग बनता गया। अब तो स्थिति यहां तक बिगड़ गई है कि विवाह में वर वधु के गुण गौण हो गये हैं तथा दहेज की राशि ही विवाह की निर्णायक शक्ति बन गई है। दहेज की राशि कम मिलने पर हर महीने हजारों नव वधुएं भारत में जला कर या अन्य तरीकों से मार दी जाती हैं। इसका मूल कारण उत्तराधिकार को मूर्खतापूर्ण दर्शन ही है। प्रकृतिवादी व्यवस्था में दहेज तथा उत्तराधिकार का प्रगतिशील रूप जानने के लिये पृष्ठ-१३ पैरा-३ देखिये।

उत्तराधिकार बनाम लाटरी या जुआ

व्यक्ति को उत्तराधिकार में धन प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता। अतः इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव अनायास पाये हुए धन यानि लाटरी या जुए में प्राप्त किये हुए धन के समान होता है। प्रायः लोग अपनी आय का एक या दो प्रतिशत धन भविष्य के लिये बचा पाते हैं। अतः १ लाख का उत्तराधिकार पाने पर उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव उन लोगों पर ५० लाख या अधिक रुपयों की नकद आमदनी के बराबर होता है। क्योंकि वे जानते हैं कि जिन्दगी भर मेहनत करके जब वे ५० लाख रुपये या उससे अधिक कमाते तब कहीं जाकर वो १ लाख बचा पाते हैं। गरीबों पर जो कि कुछ भी नहीं बचा सकते इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव और भी ज्यादा होता है। अतः वे अपने उत्तराधिकार को छोड़ने की कल्पना ही नहीं कर सकते। इसीलिये मानव इतिहास में खून खराबे का सबसे बड़ा कारण सम्पत्ति तथा उसका उत्तराधिकार रहा है।

उत्तराधिकार का सिद्धान्त पुनर्जन्म तथा कर्मफल के सिद्धान्त के विपरीत है:-

भारतीय दर्शन में यह माना गया है कि मरने पर व्यक्ति की आत्मा नया जन्म (पुर्नजन्म) लेती है तथा नए जन्म में उसे पिछले जन्म में किये गये अच्छे अथवा बुरे कर्मों का फल "कर्मफल" मिलता है। इस सिद्धान्त का उल्लेख वेदों में कहीं पर भी नहीं है। अतः इस सिद्धान्त के सही होने के बारे में अनेकों शंकायें हैं। हिन्दू धर्म के अलावा अन्य धर्मों के लोग पुनर्जन्म को नहीं मानते। फिर भी यदि सिर्फ तर्क करने के लिये ही यह मान ही लिया जाये कि पुनर्जन्म तथा कर्मफल के सिद्धान्त सही हैं तो फिर यह भी मानना पड़ेगा कि अच्छे व्यक्ति अगले जन्म में भाग्यशाली ही रहेंगे ही। अतः यदि उत्तराधिकार को कानून बना कर समाप्त या सीमित कर दिया जाये तो भी अच्छे व्यक्ति तो कर्मफल के सिद्धान्त के अनुसार सम्पत्तिवान तथा भाग्यशाली बन ही जावेंगे। तब उन्हें उत्तराधिकार की क्या जरूरत है? जाहिर है जो व्यक्ति उत्तराधिकार के पक्ष में कुतर्क देने की दुष्टता करते हैं वे दिल से पुनर्जन्म तथा कर्मफल के सिद्धान्त को नहीं मानते केवल कुतर्क ही करते हैं।

व्यक्तिगत उत्तराधिकार को समाप्त करने या सीमित करने के कानून की आवश्यकता:-

हमारे समाज में कई समाज विरोधी क्रिया-कलापों जैसे तस्करी, घूसखोरी, मिलावट, देशद्रोह तथा कुछ गलत परम्पराएं जैसे सतीप्रथा, बाल-विवाह, दहेज प्रथा इत्यादि को रोकने के कानून बंने हुए हैं। अपराध करने पर समाज द्वारा दण्ड देने का भी प्रावधान रखा गया है। जैसा

कि हमने चिन्तन द्वारा देखा कि सम्पत्ति के उत्तराधिकार का सिद्धान्त अप्राकृतिक, असामाजिक तथा अवांछनीय है अतः यह बुद्धि का तकाजा है, न्याय का पक्ष है, समय की मांग है कि पाषाण युग से चले आ रहे बर्बर तथा शोषक सामाजिक दर्शन में निहित उत्तराधिकार के सिद्धान्त को चुनौति दी जाये और इस गलत सामाजिक परम्परा को समाप्त करने के लिये कानून बनाये जायें।

भूमि सीमा का कानून, सम्पदा कर, मृत्युकर, आदि को समाप्त करके सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार को समाप्त करने का कानून बनेः-

कुछ बुद्धिजीवी यह प्रश्न करते हैं कि जब भूमि सीमा, सम्पदाकर तथा मृत्युकर के कानून बने हुए हैं फिर भी देश मे भ्रष्टाचार, कानून तथा व्यवस्था की दुरावस्था के कारण कानूनों का पालन ईमानदारी से नहीं हो पा रहा है तो सम्पत्ति उत्तराधिकार को सीमित या समाप्त करने के कानून बनाने से क्या लाभ होगा। उनको हमारा उत्तर यह है कि समाज के सभी आर्थिक अपराधों की जड़ मानव की यह गलत मान्यता है कि वह अपने आने वाली पीढ़ियों के ऐशोआराम के लिए सीमाहीन धन संचय करें। यदि हम भूमि सीमा, सम्पदाकर, मृत्यु कर आदि समाप्त करके सम्पत्ति के उत्तराधिकार को समाप्त करने का कानून बनाएं तथा कानून तोड़ने वाले को मृत्यु दण्ड दें तो समाज के समस्त आर्थिक अपराधों की जड़ यानि उत्तराधिकार की गलत मान्यता पर प्रहार होगा। पर ऐसा करने से पूर्व राज्य के सभी बच्चों के विकास के समान अवसर की गारन्टी देनी होगी, अर्थात उनकी पूरी जिम्मेदारी सरकार को लेनी होगी। बच्चे माँ-बाप के पास ही रहे पर माँ-बाप की आर्थिक अवस्था समाज के सभी बच्चों के विकास के समान अवसर में बाधक न हो। ऐसी व्यवस्था सरकार को करनी होगी। आदर्श व्यवस्था में बच्चों की शिक्षा, दीक्षा, चिकित्सा, भोजन-कपड़ा, इत्यादि सभी आर्थिक आवश्यकताओं की सरकार की ओर से व्यवस्था हो। इसका प्रारम्भ समाज के सभी बच्चों की निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था तथा स्वास्थ्य सेवा सरकार अथवा गुरूकुल जैसी स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा करके किया जा सकता है।

सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार के दुष्परिणामः-

सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार को कानूनी रूप देने से समाज के अज्ञानी लोगों ने व्यक्तिगत तथा पारिवारिक आर्थिक हितों की वेदी पर सामाजिक हितों का बलिदान देना प्रारम्भ कर दिया। अब व्यक्ति अपनी पारिवारिक आवश्यकताओं से हजारों गुना अधिक धन का संग्रह अपनी आवश्यकता अथवा ऐशो-आराम के लिये नहीं वरन् आने वाली अनेकों पीढ़ियों के ऐशो-आराम के लिये करने लगा। इसी कारण अपने बच्चों के वयस्क होने पर भी उन्हें न केवल अपनी आवश्यकता वरन् ऐशो-आराम के लिये भी असीमित धन देना एक सामाजिक कुरीति बन गई है।

वैदिक काल से ही सीमाहीन धनसंचय की कुप्रवृत्ति शुरु हो गई थी। मनु स्मृति में धोखाधड़ी, बेईमानी इत्यादि आर्थिक अपराधों के दण्ड की व्यवस्था का उल्लेख है। राम का बनवास तथा महाभारत के युद्ध का कारण उत्तराधिकार था। इसी कारण मानव जाति के इतिहास में खून की होली हजारों बार खेली गई है।

भ्रष्टाचार की जननी सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार का भ्रष्ट सामाजिक दर्शनः-

सम्पत्ति के असीमित व्यक्तिगत उत्तराधिकार की कल्पना करना ही प्रकृति के निर्धारित किये हुए नियमों से भटक जाना है। इसी कारण सीमाहीन धनसंचय का भ्रष्ट विचार पैदा हुआ। भ्रष्ट विचारों के अनुरूप ही भ्रष्ट आचार हुए और भ्रष्टाचार का जन्म हुआ।

सीमाहीन धन संचय तथा इसके द्वारा होने वाले भ्रष्टाचार को कम करने के प्रयास हजारों वर्षों से किये जा रहे हैं। मनु स्मृति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, प्लेटो तथा अरस्तु की पुस्तकों में इसका विशद् विवरण मिलता है। हर काल तथा देश के धर्माचार्यों, उपदेशकों, सन्तों, प्रचारकों, पीरों तथा फकीरों ने इसे बुरा बताया है। अनेकों राजाओं ने इसे रोकने के कानूनी प्रयास भी किये थो फिर भी इन्हें सफलता नहीं मिली इसका एकमात्र कारण यही है कि दार्शनिकों की भूल के कारण पाषाण युग से आधुनिक युग तक सम्पत्ति के असीमित व्यक्तिगत उत्तराधिकार को कानूनी मान्यता प्राप्त रही।

प्रकृतिवाद-सम्पत्ति के असीमित व्यक्तिगत उत्तराधिकार रहित पूंजीवादः-

पूंजीवाद का "मुक्त व्यापार का सिद्धान्त" पहले तथा दूसरे प्राकृतिक सिद्धान्त के अनुरूप है। किन्तु न केवल पूंजीवादी वरन साम्यवादी देशों में भी सम्पत्ति के असीमित व्यक्तिगत उत्तराधिकार के गलत कानून बने हुए हैं। ये कानून पहले प्राकृतिक सिद्धान्त "विकास के समान भौतिक अवसर" के सिद्धान्त के विपरीत है। इसके लिये समाज में सही आर्थिक रचना में पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था को रखते हुए सम्पत्ति के असीमित व्यक्तिगत उत्तराधिकार को समाप्त करना होगा। तथा एक करोड़ रूपये से ज्यादा की सम्पत्ति पर प्रतिवर्ष १० प्रतिशत कर लगाने पर हमारा सुझाव है कि अपने पुरुषार्थ से व्यक्ति पूंजीवादी व्यवस्था के अर्न्तगत खूब धन कमाये, जमा करे, खर्च करे, उस पर राज्य की कोई बन्दिश न हो, किन्तु मरने पर उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी केवल उसके बच्चे न होकर समाज के सभी बच्चे हों। समाज के बच्चों पर खर्च करने के बारे में व्यक्ति वसीयत कर सकता है। बिना वसीयत की छोड़ी गई सम्पत्ति राज्य द्वारा अधिग्रहण करके समाज के योग्य युवक-युवतियों को रोजगार दिलवाने तथा बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, चिकित्सा, पोषण पर खर्च की जाये। इस परिकल्पना को "सामाजिक उत्तराधिकार" का नाम दिया जा सकता है। वयस्क होने पर जो बच्चे उद्योग लगाना तथा व्यापार करना चाहें तो वे व्यापारिक बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं, शेयर बाजारों, इत्यादि से व्यापारिक शर्तों पर धन लेकर

अपनी रूचि तथा प्रतिभा के अनुसार धन कमायें।

प्रतिद्वन्दात्मक सहयोग : प्रकृतिवादी अर्थात सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार रहित पूंजीवाद के सिद्धान्त पर समाज की आर्थिक रचना करने पर मानव में "प्रतिद्वन्दात्मक सहयोग" की भावना का विकास होगा। यह भावना वर्तमान समय के गलत आर्थक दर्शनों के कारण सुषुप्त अवस्था में है। इस भावना में व्यक्ति आर्थिक क्षेत्र में खिलाड़ी की भावना से कार्य करेगा जो स्वयं भी खेलता है तथा अपने टीम तथा विपक्ष की टीम को भी बेहतर खेल प्रदर्शित करने में सहयोग करता है। तब एक सीमा तक सम्पत्ति के संचय कर लेने पर मानव की भावना समाज के अन्य योग्य व्यक्तियों को सम्पत्ति के अर्जन में सहयोग देने की होगी। प्रतिद्वन्दात्मक सहयोग प्रकृति का अटल नियम है। इसी के कारण पर्यावरण में सन्तुलन बना रहता है। ऋतुएं क्रम से आती जाती रहती हैं तथा जन्म मरण द्वारा सृष्टि का चक्र चलता रहता है।

प्रकृतिवाद की ओर पहला कदमः-

जनमत संग्रह द्वारा सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार की अधिकतम सीमा तय करना सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार के स्थान पर स्म्पत्ति के "सामाजिक उत्तराधिकार" को कानूनी रूप देना यद्यपि हमारा लक्ष्य होना चाहिये किन्तु जिन बच्चों, सम्बन्धियों एवं मित्रों ने जितनी जितनी मात्रा में व्यक्ति को धन अर्जित करने में सहयोग दिया तथा अपने जीवन काल में व्यक्ति ने इसका समुचित प्रतिदान उनको नहीं किया वो अपने दिये हुए सहयोग के अनुपात में उसके मरने पर उसकी सम्पत्ति के अधिकारी हुए। पर इस सब बातों का हिसाब लगा पाना एक जटिल तथा दुष्कर कार्य है। अतः हिसाब की सुविधा के लिए हम यह मानते हैं कि जिन लोगों को उसके जीवन काल में उसकी सम्पत्ति के अर्जन में सहयोग किया है तथा बदले में प्रतिदिन अथवा नकद भुगतान न पाया हो तो वे व्यक्ति के मरने पर उसकी सम्पत्ति के एक सीमा तक उत्तराधिकारी हैं। समाज जनमत संग्रह द्वारा अथवा अन्य सकारात्मक लोकतान्त्रिक प्रकिृया के द्वारा सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार की सीमा तय कर सकता है। हमें यह तथ्य स्पष्ट रूप से समझना चाहिये कि प्रतिनिधि लोकतंत्र की वर्तमान व्यवस्था वास्तव में धनतंत्र है। इसको विस्तार से समझने के लिए प्राकृतिक दर्शन पांचवां आयाम देखें (योग्यतंत्र) अतः प्रथम चरण के रूप में समाज के सभी वर्गों के प्रतिनिधियों को संगठित होकर सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार को अधिकतम सीमा तय करने तथा एक करोड़ से ज्यादा की सम्पत्ति पर प्रति वर्ष १० प्रतिशत लगाने का आन्दोलन प्रारम्भ करना चाहिये।

कालान्तर में मुद्रा स्फीति के कारण तय की हुई सीमा पर प्रभाव न पड़े इसीलिये सोने की

किसी भी मात्रा को आधार माना जा सकता है। उदाहरण के लिये यदि जनमत संग्रह द्वारा व्यक्तिगत उत्तराधिकार की अधिकतम सीमा एक किलो सोना तय हो तो उसका मतलब यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पूरे जीवन काल में उत्तराधिकार कानून के अन्तर्गत एक किलो सोने के बराबर मूल्य की सम्पत्ति से ज्यादा उत्तराधिकार प्राप्त नहीं कर सकता है। यदि उस व्यक्ति के माँ-बाप के पास इससे अधिक सम्पत्ति है तो वे इसे खर्च करने को स्वतंत्र हैं। यदि वे चाहें तो अपनी सम्पत्ति को अपने जीवन काल में ही किसी भी सामाजिक सेवा के कामों में लगा जायें या मरने से पहले किसी सामाजिक कार्य में अपनी सम्पत्ति वसीयत द्वारा दे जायें। जान बूझ कर कानून तोड़ने पर सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को कठोर दण्ड देने की व्यवस्था कानून में होनी चाहिये। हमारा सुझाव है कि कानून तोड़ने वालों की समस्त सम्पत्ति जब्त करके उन लोगों में बांट दी जाये जिन्होंने कानून की मदद की। साथ ही प्रचार के सभी साधनों द्वारा धुंआधार प्रचार करके व्यक्तिगत उत्तराधिकार से पैदा होने वाली बुराइयों के बारे में जनता को बताया जाये।यहां यह कहना आवश्यक है कि पिछले बारह हजार वर्षों से मानव जाति को सीमाहीन धन संचय की बुराइयों के बारे में समझाने को प्रयास चलता रहा है पर अभी तक सफलता नहीं मिली है। अतः अब तो सभी को यह जान लेना चाहिये कि केवल सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार को कानूनी रूप से सीमित करके ही इस सामाजिक कुप्रथा को मिटाने की शुरुआत की जा सकती है।

कानून तथा प्रचार की उपयोगिताः-

किसी गलत प्रथा या परम्परा को समाप्त करने के लिये पहले उसे समाप्त करने का कानून बनाया जाये। जैसे सतीप्रथा, बालविवाह, दहेजप्रथा, इत्यादि को समाप्त करने के कानून बने। फिर कानून बन जाने पर धुआंधार प्रचार करके उसके खिलाफ जन मानस बनाया जाये। केवल कानून बनाने से विशेष लाभ नही होगा। कानून बनाने के बाद उस कानून की सामाजिक उपयोगिता का प्रचार ही उस कानून को समाज में प्रभावी बनाता है। पर यदि बिना कानून बनाये ही किसी प्रथा या परम्परा के खिलाफ प्रचार किया जाये तो वह वर्तमान भ्रष्ट व्यवस्था में अधिक प्रभावी नहीं होगा। अतः पहले कानून बनाए जायें फिर उसका धुआंधार प्रचार करके सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार के खिलाफ जन मानस बनाया जाएगा तब ही यह अभियान सफल माना जायेगा।

प्रकृतिवादी व्यवस्था में दहेज तथा उत्तराधिकार का नवीन स्वरूप :- उत्तराधिकार को सीमित कर देने का कानून बन जाने पर व्यक्ति अपनी पुत्री को विवाह के समय दहेज न देकर उसके हक का उत्तराधिकार देंगे। माता-पिता उसके हिस्से की रकम बैंक में इस शर्त के साथ जमा करायें कि उसे पुत्री के ससुराल के लोग न लें सकें तथा उस रकम का ब्याज आजीवन पुत्री को

मिलता रहे। मरने पर यह रकम उसके बच्चों को इसी शर्त के साथ उत्तराधिकार में मिले। पुत्रों को अचल सम्पत्ति का सीमित उत्तराधिकार मिले।

सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार की समाप्ति

समाज में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को रखते हुए सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार के स्थान पर सामाजिक उत्तराधिकार को कानूनी रूप देने पर समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तनों का एक सिलसिला शुरु हो जायेगा। उस कानून को बनाने के साथ ही सरकार को किसी भी व्यक्ति की अकाल मृत्यु हो जाने पर उसके परिवार के वयस्क योग्य सदस्यों को रोजगार तथा यदि परिवार में कोई भी रोजगार करने योग्य न हो तो उसके परिवार का भरण-पोषण तथा उसके बच्चों को शिक्षा दीक्षा की पूरी अर्थिक जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी होगी। सामाजिक उत्तराधिकार लागू करने की यह अनिवार्य शर्त है।

सम्पत्ति के स्वामित्व का प्रकृतिक स्वरूपः-

अचल सम्पत्ति का स्वामित्व समाज तथा चल सम्पत्ति का स्वामित्व व्यक्ति के पास हो तो जो लोग इस नई आर्थिक व्यवस्था में समाज से छुपा कर धन अपने बच्चों को देना चाहेंगे वे अचल सम्पत्ति रखना नहीं चाहेंगे। अतः सरकार अपनी चल सम्पत्ति यानि बैंक, व्यापारिक प्रतिष्ठान तथा उत्पादानों के साधनों जैसे रेल, डाकतार, कल-कारखानों के शेयर, जनता को बेच कर उसके पैसे से देश की आवश्यकता अनुसार अचल सम्पत्ति यानि बांध, नहर, कुंए, तालाब, पुल, मकान तथा सड़कें बनवाएं। जो नागरिक अपनी अचल सम्पत्ति बेचना चाहे उसे सरकार खरीद ले और जनता को रहने के लिए मकान तथा खेती करने के लिये जमीन किराये पर दे । निविदा द्वारा व्यक्ति को जीवन भर के लिये मकान या जमीन किराये पर दी जाये। पति या पत्नि में से किसी एक की मृत्यु होने पर दूसरे को स्वतः ही यह मकान या जमीन किराये पर मिल जायेगी। पर उसके वयस्क बच्चों को अपने पुरुषार्थ से धन एकत्र करके अपने लिये जमीन किराये पर लेनी होगी। व्यक्ति अपनी उद्यमशीलता से मकान तथा खेती की जमीन की देख-रेख अच्छी तरह करे इसके लिये सरकार को एक ऐसी व्यवस्था करनी होगी जिसके अनुसार यदि व्यक्ति किराये पर ली गई सम्पत्ति अपने जीवन काल में ही वापस सरकार को दे तो उसके बढ़े हुए किरये का लाभ भी उसी को मिले। इससे किराये पर ली गई अचल सम्पत्ति की देखरेख भी उत्तम प्रकार से हो जायेगी।

भारतीय जीवन दर्शन में यह माना गया है कि दुनिया एक सराय है और व्यक्ति उसमें एक मुसाफिर की तरह आता है और चला जाता है। सराय में मुसाफिर रहने के लिये कमरा किराये पर लेता है। कमरा खरीदता नहीं। फिर इस दुनिया में आकर व्यक्ति सम्पत्ति का स्वामित्व

क्यों ले? समाज अचल है समाज नहीं मरता जबकि व्यक्ति चलायमान (मरता) है। अचल सम्पत्ति के निजी स्वामित्व का वर्तमान स्वरूप सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार के भ्रष्ट दर्शन के कारण ही हुआ है। ज्यों ही सम्पत्ति के सामाजिक उत्तराधिकार का दर्शन "यानि व्यक्ति के मरने पर उसकी सम्पत्ति समाज के सभी बच्चों के विकास कार्यों पर खर्च की जाए" लागू होगा, अचल सम्पत्ति का स्वामित्व व्यक्ति से हट कर समाज के पास स्वतः ही होता चला जायेगा।

जैसे ही राज्य के पास इतनी अचल सम्पत्ति हो जायेगी कि उसके किराये से ही देश की आर्थिक आवश्यकता पूरी हो जायेगी तब सभी प्रकार के कर समाप्त कर दिये जाएं।

मरने पर व्यक्ति जितनी भी चल अचल सम्पत्ति छोड़ जाये उसे बेच कर उसका धन समाज के सभी बच्चों के विकास कार्यों शिक्षा, चिकित्सा, इत्यादि पर खर्च किया जाये। वयस्क होने पर बच्चे यदि उद्योग लगाना चाहें या व्यापार करना चाहें तो वह व्यापारिक वित्तीय संस्थाओं, शेयर बाजार इत्यादि से व्यापारिक शर्तों पर धन लेकर अपनी रूचि तथा प्रतिभा के अनुरूप धन कमाएं।

प्रकृतिवाद की ओर तीसरा कदमः-

विश्व के सभी राष्ट्रों में प्रकृतिवादी दर्शन के अनुरूप सरकारों की स्थापनाः

प्रकृति ने राष्ट्रों को नहीं बनाया। उत्तराधिकार के गलत दर्शन के कारण सीमाहीन धन संचय की भावना पैदा हुई। इसी कारण धरती पर मानव ने मनमानी राष्ट्रीय सीमा रेखाएं खींच कर अलग-अलग राष्ट्र बना डाले। अलग-अलग राष्ट्र बनाने के लिए भूगोल, इतिहास, नस्ल धर्म, जाति, रंगभेद, भाषा भेद, सांस्कृतिक भिन्नता आदि अनगिनत प्रपंचो का सहारा लिया गया। यह कैसी हैरानी की बात है कि गधे, घोड़े, कुत्ते, बिल्ली, सांप चूहा, चिड़िया, मछली अजगर, गरज यह कि यह सारे जीव जन्तु एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में बेखटके घूमने जा सकते हैं तथा वहां रह भी सकते हैं। इन्हें पासपोर्ट या वीसा की जरूरत नहीं, पर यदि इन्सान एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में घूमने जाता है तो उसे पासपोर्ट या वीसा बनवाना पड़ता है। अन्य जीव जन्तुओं की तरह वह वहां स्थाई निवास भी नहीं कर सकता। भारत, पाकिस्तान या बंगला देश का नागरिक यदि अमरीका, आस्ट्रेलिया या रूस जाकर स्थाई रूप से रहना चाहे तो उसे अनगिनत कानूनी बाधाओं का सामना करना पड़ेगा। जब पशु-पक्षियों के लिये किसी भी राष्ट्र में जाकर रहने पर

देश का नामः	क्षेत्रफल भारत के मुकाबले में कितना गुना बढ़ा	जनसंख्या करोड़ों में	आबादी का घनत्व प्रति वर्ग मील में मानव संख्या
भारत	१ गुना	८०	२००

ब्राजील	३ गुना	१	१
आस्ट्रेलिया	३ गुना	१	१
कनाडा	२ गुना	२	२.५
संयुक्त राज्य अमेरिका	३ गुना	२०	२०
रूस	७ गुना	२०	४

रोकटोक नहीं तो फिर मानव पर यह रोकटोक क्यों? यह यह रोकटोक अप्रकृतिक है अतः गलत है। इसी रोकटोक के कारण विश्व के राष्ट्रों में जनसंख्या के घनत्व में जमीन आसमान का फर्क है। सन् १९८२ में उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार यह फर्क निम्न है:-

आप ही सोचिये कि प्रति वर्ग मील में जब भारत में २०० इन्सान बसते हों तथा अमेरिका में केवल २०, रूस में केवल ४, कनाडा में केवल २ एवं ब्राजील तथा आस्ट्रेलिया में केवल १ आदमी रहता है तो भारत में प्रतिव्यक्ति को इतने ही अनुपात में कम प्राकृतिक साधन मिले।

१९८२ में उपरोक्त आंकड़े मोटे तौर पर सही हैं। आगामी समय के सही आंकड़े जानने के लिये इन देशों की सरकारों से आंकड़े प्राप्त करने होंगे।

किसी भी राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति या विकास की दिशा एवं गति का निर्धारण उसके नागरिकों को उपलब्ध प्राकृतिक साधनों के आकार पर ही होता है अतः आबादी के घनत्व के इस असन्तुलन को मिटाने के लिए निम्न कदम उठाये जायें।

१. भारत तथा घनी आबादी वाले अन्य राष्ट्रों में परिवार नियोजन का लक्ष्य आबादी घटाना होना चाहिये इसके बारे में विस्तार से प्राकृतिक दर्शनों में लिखा गया है।

२. संयुक्त राष्ट्र संघ में इस मुद्दे पर बहस चलाई जाये।

संयुक्त राष्ट्र संघ तथा विश्व के अन्य मंचों पर बहस चलाकर जनता को केवल उस सम्बन्ध में जागृत किया जा सकता है। हमारी मान्यता है जब तक सभी राष्ट्रों में प्रकृतिवाद के अनुरूप सरकारें नहीं बन जातीं तब तक यह गड़बड़ी चलती रहेगी। यदि मानव जाति तीसरे विश्व युद्ध से बची रही तो भी उस काम में ५० से १०० वर्ष तक भी लग सकते हैं। अतः इस दिशा में प्रयास अभी से शुरु हो जाने चाहिये।

१९८२ में विश्व में इस समय हथियारों की दौड़ पर प्रति मिनट ८० लाख रुपये खर्च हो रहे हैं। अनुसंधान के हजारों क्षेत्रों में सैंकड़ों राष्ट्र अलग-अलग खर्च कर रहे हैं। इस प्रकार विश्व सरकार न होने के कारण ही १६० लाख रुपये प्रति मिनट की हानि विश्व की जनता को हो रही है।

भारतीय दार्शनिकों ने तो बहुत पहले ही सारे विश्व को एक परिवार माना था। वेदों में सारे विश्व को एक परिवार मानकर "वसुधैव कुटुम्बकम" का उद्घोष किया गया है। भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में इसी दर्शन के अनुरुप लोकोक्ति में कहा गया है कि "सबे भूमि गोपाल की" अर्थात सारी जमीन पर समाज का अधिकार है। इसी भाईचारे की भावना के अनुरूप विश्व में प्रकृतिवादी दर्शन के अनुसार जब विश्व सरकारें बनेगी तब ही विश्व युद्ध या अन्य युद्धों का खतरा मानव जाति के सर पर से टलेगा।

प्रकृति विरोधी दर्शन पर आधारित भारत की वर्तमान कर प्रणाली बनाम कर विहीन प्राकृतिक प्रणाली:-

पहले प्राकृतिक सिद्धान्त "विकास के समान भौतिक अवसर" मिलने पर भी सभी जीव दूसरे प्राकृतिक सिद्धान्त "प्रकृतिक के अनुरूप विकास" करते हैं। समान हवा, धूप, पानी आदि मिलने पर भी नींबू का पेड़ छोटा होगा तथा ताड़ का पेड़ लम्बा होगा। इसी प्रकार मनुष्य में भी कुछ ज्ञान के लिये, कुछ नाम के लिये तथा कुछ धन के लिए प्राकृतिक रूझान रहते हैं। जिन लोगों का धन संचय और अर्जन में रूझान है वे स्वतः ही इस दिशा में जोरों से आगे बढ़ जायेंगे।

वर्तमान समय में भारत की कर प्रणाली प्रकृति विरोधी, नकरात्मक तथा गलत है। इसमें व्यक्ति की आय बढ़ने के साथ साथ आयकर की दर भी बढ़ती जाती है। उदाहरण के लिये २० हजार प्रतिवर्ष कमाने वाले को १० प्रतिशत की दर से आय कर देना पड़ता है पर एक लाख रुपये कमाने वाले को ८० प्रतिशत की दर से आयकर देना पड़ता है।

यह सीमाहीन धन संचय को रोकने का अप्राकृतिक तथा नकरात्मक तरीका है। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप काले धन की उत्पत्ति होती है जो कि समाज के आर्थिक आधार को दीमक की तरह चाट कर खोखला कर देती है।

प्रकृतिक व्यवस्था के प्रथम चरण में व्यक्ति का सम्पत्ति पर तो अधिकार रहेगा पर उत्तराधिकार सीमित हो जायेगा। साथ ही बच्चों की पूरी आर्थिक जिम्मेदारी सरकार की होगी पर वे मां-बाप के पास ही रहेंगे। साथ ही व्यक्ति चाहे जितना पैसा कमाए उसे एक ही दर से आयकर देना होगा।

प्रकृतिवादी व्यवस्था के दूसरे चरण में व्यक्ति का चल सम्पत्ति तथा उत्पादन के साधनों पर अधिकार होगा। बच्चों की पूरी आर्थिक जिम्मेदारी सरकार की होगी। कर समाप्त कर दिये जायेंगे। अचल सम्पत्ति के किराये में ही सरकार अपने खर्च चलायेगी साथ ही उत्तराधिकार सीमित हो जायेगा। इस प्रकार उत्तराधिकार के भ्रष्ट दर्शन को सीमित करके हम समाज से

भ्रष्टाचार सीमित कर सकते हैं।

सीमाहीन धन संचय रोकने हेतु मानव जाति द्वारा किये गये प्रयासों का संक्षिप्त विवरणः

ऋग्वैदिक तथा उत्तरवैदिक काल के प्रयासों का विवरणः-

ऋग्वैदिक काल से ही उत्तराधिकार के गलत दर्शन के कारण सम्पत्ति के लिये लड़ाई झगड़े शुरु हो गये थे। उसे रोकने के लिए यजुर्वेद में कहा गया है कि

ओउम् ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंचित जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यविद धनम्

यजुर्वेद ४०-१

इस संसार में जो कुछ भी चराचर है वह सब ईश्वर से व्याप्त है। इसलिये उसका निष्काम भाव से भोग करो। किसी दूसरे का धन मत लो। इसी संदर्भ में उत्तरवैदिक काल की सुक्तियां इस प्रकार हैं:-

केवलाघो भवति केवलादी,

अकेला भोग करने वाला पाप को ही भोगता है।

दट्टावम्भसि निवेष्टव्यो गले बदध्वा दृढ़शिनलाम्।

धनवन्तमदातार दारिद्रच्चातपस्विनम्।

धनी होने पर दान न करने वाले तथा दरिद्र होने पर तपस्या (यानि मेहनत) न करने वाले इन दोनों प्रकार के मनुष्यों के गले में पत्थर बांध कर समुद्र में डुबो देना चाहिये।

दान भोगोनाशस्तित्रो गतयो भवन्ति विन्तस्य।

यो न ददाति न मुक्ते तस्य तृतीया गति र्भवति।

धन की तीन गतियां होती हैं दान, उपभोग तथा नाश। जो व्यक्ति न दान करता है न उसका उपभोग करता है उसके धन का नाश होता है।

नोटः- इसका मतलब यह हुआ कि जो व्यक्ति न दान करते हैं न उसका उपयोग करते हैं उनके धन को चोर, डाकू ले जाते हैं। यह फिर उसके मरने के बाद उत्तराधिकार में ज्यादा धन मिलने से उसके बच्चे बिगड़ जाते हैं तब वे धन का नाश करते ही हैं। अपने जीवन का भी नाश कर लेते हैं।

इस पर भी जब धन संचय की प्रवृति नहीं रुकी तो भारतीय ऋषियों ने मानव जीवन को चार आऋमों में बांट दिया।

१. ब्रह्मचर्य आश्रम २. गृहस्थ आश्रम

२. वानप्रस्थ आश्रम ४. सन्यास आश्रम

इसमें जीवन के एक चौथाई समय यानि केवल गृहस्थाश्रम में ही धन कमाने की छूट थी। पर कालान्तर में सभी ने इसका पालन नहीं किया। अतः धन संचय की प्रवृत्ति बढ़ती ही रही।

वैदिक काल में सीमित उत्तराधिकार की परम्पराः-

तब कुछ स्थानों पर कुछ ऋषियों ने सीमित उत्तराधिकार की परम्परा चलाने का प्रयास किया। इसके अनुसार विवाह के समय लड़के को उसके माँ-बाप उसके परिवार के लिये अलग झोपड़ी बनाने का सामान तथा लड़की को उसके माँ-बाप ५ बर्तन, २ जोड़ी कपड़े तथा एक महीने का राशन देते थे। उनसे उम्मीद की जाती थी कि एक महीने की अवधि में वे स्वावलम्बी होकर अपना जीवनयापन करें, पर कालान्तर में लड़के शादी के बाद भी खेती बाड़ी में हाथ बंटाने के कारण पिता के घर में ही रहने लगे तथा लड़की को जो सामान विवाह के समय गृहस्थी जमाने के लिए मदद के रूप में दिया जाता था, उसने दहेज का घिनौना रूप धारण कर लिया।

मृत्युभोज द्वारा सीमित उत्तराधिकार की परम्परा के प्रयासः-

हिन्दुओं में इस परम्परा के अनुसार धनी व्यक्ति के मरने पर एक सीमा तक ही धन उसके वारिसों को मिलता था। शेष धन सारे गांव या कबीले के लोगों को मृत्यु के १३वें दिन भोज देकर समाप्त कर दिया जाता था। इसे तेरहीं के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार कुछ हिन्दु जातियों में मृत्यु के १२ दिन बाद जाति-भोज देने की परम्परा है जिसे "बारवां" कहते हैं। गरीबों के लिये यह परम्परा अनिवार्य नहीं थी। पर अब धनी परिवार अपनी सारी सम्पत्ति मृत्युभोज में खर्च नहीं करते तथा गरीबों के लिये भी यह परम्परा अनिवार्य हो गयी है। अतः इस परम्परा में दोष उत्पन्न हो गये हैं।

श्री राम द्वारा उत्तराधिकार के विरुद्ध मर्यादा स्थापित करने का प्रयास

जब श्री राम के घर में उत्तराधिकार का झगड़ा चला तो उन्होंने स्वेच्छा से राज्य छोड़कर इस समस्या को हल किया तथा सबके सामने एक आदर्श पेश किया। भारत ने भी अयोध्या के राज्य को धरोहर समझ कर ट्रस्टीशिप की भावना के अनुसार राज्य संभाला। उन दोनों ने उम्मीद की थी कि आने वाली पीढ़ियां उनके आदर्श के अनुसार चलेंगी पर ऐसा नहीं हुआ। यदि श्री राम स्वयं ही अपने राज्य में उत्तराधिकार को समाप्त करने का कानून ही बना जाते तो फिर पिछले १० हजार वर्षों से मानव समाज में इतनी गड़बड़ी नहीं होती।

श्री कृष्ण द्वारा दुर्योधन को सीमित उत्तराधिकार के बारे में समझाने का प्रयासः-

महाभारत का युद्ध शुरु होने से पहले श्री कृष्ण दुर्योधन के पास शान्ति का दूत बन कर युद्ध रोकने का अन्तिम प्रयास करने गए थे। जब दुर्योधन नहीं माना तो उन्होंने प्रस्ताव किया कि सीमित उत्तराधिकार के रूप में पाण्डव को ५ गांव दिये जायें। सभी जानत हैं कि दुर्योधन ने अहंकारपूर्वक कहा "सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्ध न केशव।" हे कृष्ण "मैं तो पाण्डवों को सुई की नोक के बराबर भी जमीन बिना लड़े नहीं दूंगा। फलस्वरूप महाभारत का युद्ध हुआ और भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का पतन हो गया। आश्चर्य तथा दुःख की बात यह है कि जिन पाण्डवों को उत्तराधिकार के गलत दर्शन के कारण इतने दुख भोगने पड़े उन्होंने तथा श्री कृष्ण ने भी महाभारत का युद्ध जीतने पर उत्तराधिकार को सीमित या समाप्त करने का कानून नहीं बनाया।

१: दानवीर कर्ण का उदाहरण:

सूर्य-पुत्र कर्ण अपनी व्यक्तिगत योग्यता तथा प्रतिभा से असीम सम्पत्ति का स्वामी बना था। वह हर एक याचक को मुंह मांगा दान देता था। उससे बड़ा दानवीर मानव जाति में आज तक कोई भी नहीं हुआ। पर उसके द्वारा प्रतिपादित दान परम्परा को बाद में धनिक लोगों ने नहीं अपनाया।

२: गौतम बुद्ध तथा महावीर स्वामी द्वारा राज्य त्याग का उदाहरण:

गौतम बुद्ध तथा महावीर स्वामी दोनों दोनों ही राजाओं के बेटे थे। दोनों एक ही काल में पैदा हुए थे। उन्होंने स्वेच्छा से राज्य त्याग करके जन हित की भावना से अपने अपने धर्मों को प्रचार किया। जैन धर्म में तो अपरिग्रह यानि धन संचयन न करने को विशेष रूप से महत्व दिया गया है। प्राकृतिक दर्शन के चौथे आयाम में विस्तार से समझाया गया है कि किस प्रकार राक्षसी पूंजीवादियों ने बौद्ध तथा जैन धर्म के मूल तत्व को जनता के दिमाग से निकाल दिया तथा गौण तत्वों को विकृत तरीके से जनता के सामने पेश करके अपना हित साधन किया। फिर भी जनता ने गौतमबुद्ध तथा महावीर स्वामी के उपदेशों से लाभ नहीं उठाया न उनके द्वारा बताये गये अपरिग्रह को अपना जीवन दर्शन बनाया।

३. प्लेटो द्वारा "दार्शनिक राजा" की कल्पना:-

आज से २३ सौ वर्ष पहिले पश्चिमी जगत में महान दार्शनिक प्लेटो ने दार्शनिक राजा की कल्पना की। उसने कल्पना की कि आदर्श राजा सामान्य नागरिक सा जीवन व्यतीत करे, तथा राज भी करे। पश्चिमी देशों में उसकी यह इच्छा अभी तक अधूरी है। हमारे मत में यदि उत्तराधिकार को सीमित करने का कानून बना दिया जाये तो ऐसे व्यक्ति सामने आ जायेंगे जो उसकी कल्पना के अनुरूप राज्य को संभालेंगे। परन्तु पूर्वी संस्कृति में राजा जनक, चाणक्य,

सम्राट हर्षवर्धन आदि इसके उदाहरण हैं।

४. फैलेस का सम्पत्ति वितरण का नायाब फारमूलाः-

प्लेटो के भी पहले एथेन्स के चेलसी डाउन कस्बे में फैलेस नाम दार्शनिक हुआ था। उसने सुझाव दिया था कि धन वितरण की असमानता रोकने के लिये यह कानून बना दिया जाए कि अमीर घरानों के लड़के केवल गरीब लड़कियों से शादी करें तथा अमीर घरानों की लड़कियां केवल गरीब घरानों के लड़कों से शादी करें। यह सुझाव तो मजेदार है पर कानून द्वारा व्यवहार में नहीं लाया जा सकता।

५. हजरत मोहम्मद साहब का पूरा जीवन सादगी से बीता। मरने पर उन्होंने उत्तराधिकार में कुछ भी सम्पत्ति नहीं छोड़ी थी। इस्लाम धर्म में सच्चे मुसलमान के लिये हज, रोजा, नमाज तथा जकात अनिवार्य है। "जकात" में सच्चा मुसलमान अपनी हैसियत के अनुसार समाज सेवा के लिये धन देता है।

६. सम्राट हर्षवर्धन द्वारा कुंभ मेले में सर्वस्व दान की परम्परा का प्रयासः-

हर्षवर्धन प्राचीन भारत का अन्तिम हिन्दु सम्राट था। हर बारहवें वर्ष कुंभ के मेले में वह अपनी सारी सम्पत्ति सुपात्रों को दान कर दिया करता था। जब तक वह जिन्दा रहा उसके राज्य के अन्य धनी व्यक्तियों ने भी इसी परम्परा का पालन किया। किन्तु उसके मरने के बाद ही यह परम्परा भी लुप्त हो गई।

७. सम्राट अकबर तथा महाराजा रणजीत सिंह द्वारा सामन्तों के लिये सीमित उत्तराधिकार का कानूनः-

आईने अकबरी में उल्लेख मिलता है कि सम्राट अकबर के सामन्त या मनसबदार जब मरते थे तो बादशाही सेना तुरन्त उनके निवास को घेर कर उनकी सारी सम्पत्ति अपने कब्जे में ले लेती थी। सामन्त के बच्चों को उनकी योग्यता के अनुसार राज्य में पद दिया जाता था। उनके अन्य आश्रितों के पालन-पोषण की व्यवस्था उदारता से की जाती थी। इसी व्यवस्था के कारण अकबर के सारे सेनापति, सामन्त तथा उनके बच्चे भी योग्य थे। इस कानून ने अकबर का राज्य भारत में जमाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। पर उन्होंने यह व्यवस्था केवल सामन्तों तथा सेनापतियों के लिये ही बनाई। अकबर के स्वयं, उनके परिवार, राज्य के व्यापारी तथा बड़े किसान आदि इससे अछूते ही रहे। उत्तराधिकार के कारण ही उसके साम्राज्य की आने वाली पीढ़िया निकम्मी रहीं। इसी प्रकार महाराजा रणजीत सिंह ने भी यही प्रयास किया था पर उत्तराधिकार के गलत दर्शन के कारण जिस प्रकार संसार के अन्य साम्राज्यों का पतन हुआ उसी कारण से महान मुगल तथा सिख साम्राज्यों का भी पतन हो गया।

८. बहाई धर्म में सम्पत्ति के उत्तराधिकार को सीमित करने का प्रयासः

इस्लाम, ईसाई तथा यहूदी धर्मों का प्रगतिशील संश्लेषित रूप देखकर ईरान मे १९वी शताब्दी के उत्तरार्ध में, महात्मा बहा उल्लाह ने बहाई धर्म का प्रवर्तन किया। उत्तराधिकार सीमित करने के उद्देश्य को लेकर उन्होंने सिफारिश की कि बहाई धर्म अनुयाई अपनी सम्पत्ति को उत्तराधिकारियों के सात वर्गों में बांटे। ये सात वर्ग हैं- सन्तान, पत्नी, पिता, माता, भाई बहन तथा शिक्षकगण, पर उन्होंने इस विधि को कानूनी रूप से नहीं दिया। उन्होंने उम्मीद की थी कि इससे सीमाहीन धन संचय की भावना पर अंकुश लगेगा पर कानूनी रूप न देने के कारण यह सिफारिश प्रभावी न हो सकी।

९. बर्टेड रसेल का उदाहरणः-

२०वीं सदी में इंग्लेण्ड के महान दार्शनिक बर्टेड रसेल एक बड़े लार्ड का बेटा था। उत्तराधिकार में उसे अथाह सम्पत्ति मिल सकती थी पर उसने उसे ठुकरा कर पुरुषार्थ से धन अर्जन करके अपना जीवन बिताया। वह उसी सदी के महानतम दार्शनिकों के रूप में जाना जाता है।

१०. लालबहादुर शास्त्री का उदाहरणः-

भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री लम्बे समय तक राज्य सत्ता में रहे। वे रेल मंत्री, गृहमंत्री तथा प्रधानमंत्री भी रहे। जब वे मरे तो अपने परिवार के लिए कुछ भी छोड़ कर नहीं गये। अतः उनके मरने पर अपनी पहली बैठक में ही इन्दिरा गांधी की नई सरकार को उनके परिवार के पालन-पोषण की व्यवस्था करनी पड़ी। भ्रष्टाचार के वर्तमान युग में अपरिग्रह का यह अद्भुत उदाहरण है।

११. सम्पत्ति के उत्तराधिकार को मर्यादित करने के लिए कानून की आवश्यकता क्यो?

संसार के धर्मशास्त्रियों, मनीषियों तथा विद्वानों ने यह बात अनेकों रूप से कही है। सभी विद्वान लोग इस बात को मानते हैं कि सम्पत्ति का संचय एक सीमा के बाद विष बन जाता है। फिर भी समाज में अज्ञानी मनुष्य ये गलती करते आये हैं तथा अभी भी कर रहे हैं। ऐसे अज्ञानी मनुष्यों को समझाने-बुझाने और बुद्धि देने का कार्य धर्माचार्य उन्हें उपदेश देकर करते रहे हैं। पर जैसा कि हम अनुभव द्वारा जानते हैं कि समझाने-बुझाने से भी सभी अज्ञानी लोग मानने वाले नहीं। अतः सम्पत्ति के उत्तराधिकार को मर्यादित करने का कानून बना दिया जाये। जब अपराधों को रोकने के लिये कानून बने हैं, तो उत्तराधिकार को भी सीमित करने का भी कानून बनाया जाये।

यह जिम्मेदारी किसी एक व्यक्ति, संस्था, धर्म, राजनैतिक पार्टी या राष्ट्र विशेष की नहीं है अपितु संसार के सभी अच्छे ज्ञानी लोगों को इसका समर्थन करना चाहिये। संसार में झगड़ों की मूल जड़ गरीबी और अमीरी के बीच नहीं है। हम जानते हैं कि गरीब लोग अच्छे भी और बुरे भी होते हैं। इसी प्रकार अमीर लोग भी अच्छे और बुरे होते हैं। मानव की यह अच्छाई या बुराई उसके ज्ञान और अज्ञानता के कारण होती है। अतः हमें यह स्पष्ट होना चाहिए कि वास्तविक मतभेद या झगड़े केवल ज्ञानियों और अज्ञानियों के बीच में ही होता है।

उपरोक्त विश्लेषण से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि संसार के वर्तमान समाजों में सम्पत्ति के जो उत्तराधिकार कानून बने हैं वे समाज विरोधी अथवा समाज को कमजोर और निकम्मा बनाने के लिये चालाकीपूर्ण षडयंत्र है जिससे मात्र समाज के भीतर बैठे हुए भेड़ियों को लाभ होता है। जबकि शेष बहुसंख्यक जनसंख्या जो कानूनी और नैतिक दृष्टि से उचित एवं समता मूलक जीवन बिताना चाहती है जो ईमानदारी और सच्चाई से सामाजिक सुरक्षा को सुदृढ़ करने का काम करती है, के लिये ये हानिकारक हैं।

अपरिग्रह के सर्वमान्य सामाजिक सिद्धान्त का मखौल उड़ाना आसान है किन्तु उसका विकल्प तलाश करना असम्भव है, अव्यावहारिक और न उपलब्ध होने वाली कल्पना है। हमारे धर्म और नीतिशास्त्रों में उदात्त और विकसित मानव, व्यक्तिगत या समाज रचना के जो दस लक्षण बताये गये हैं वे ही धर्म के मूल लक्षण हैं और धर्म प्रकृति के अनुकूल होने के सिवा और कुछ नहीं हैं। जो मानव विरोधी अथवा समाज विरोधी है, वह स्वस्थ ओर परिपूर्ण प्राकृतिक व्यवस्था का निश्चय ही विरोधी है। इसीलिये तो सर्वोत्तम राज्य व्यवस्था को महाभारत में धर्मराज्य कहा गया है। प्रकृति धर्म और मानव धर्म परस्पर विरोधी अथवा परस्पर घातक नहीं, ये एक दूसरे के पर्याय है। वे एक सामंजस्य पूर्ण एवं सर्वोत्तम व्यवस्था के सहयोगी और परस्पर परिपूरक घटक हैं। फिर भला उदात्त एवं समभावी अथवा समदर्शी प्रज्ञा से सृजित किस समाज दर्शन में सम्पत्ति के अविवेकापूर्ण, अनुचित एवं अवैज्ञानिक वितरण को, जो निश्चय ही विष्मता-मूलक, शोषक और प्रपीड़िक सम्पत्ति के उत्तराधिकार कानूनों का परिपोषक है, नैतिक दृष्टि से उचित अथवा कानून सम्मत कहा जा सकता है? कानून का समाजशास्त्र सर्वाधिक औचित्यपूर्ण या तार्किक प्रतिपादन भी करता है। नीति विरुद्ध असीमित उत्तराधिकार न केवल समाज विरुद्ध है वरन् प्रकृति विरुद्ध भी है।

हम जानते हैं कि अखिल ब्रह्माण्ड भी प्रकृति का एक अंग मात्र ही है जब हम "अहम् ब्रह्मास्मि" का उद्घोष करते हैं तो मानव, प्रकृति तथा ब्रह्माण्ड के आन्तरिक सम्बन्धों को उजागर

करते हैं। क्या प्रकृति का विरोध मानव हित साधक हो सकता है? अत्याधुनिक सभ्यता की सबसे भयानक एवं गंभीर विडम्बना भी तो यही है कि वह चमर सीमा पर कृत्रिमता को पहुँचा देने में तो सफल हो गयी किन्तु इस अदम्य अभियान की भयानक परिणति के समक्ष पराजय स्वीकार करने को विवश है। फिर भी प्रकृति को दासानुदास मानने की मूर्खता अभिमानी मनुष्य क्यों कर बैठा? मानव की महत्वाकाक्षाएँ उसे सुदूर अन्तरिक्ष की विजयश्री से विभूषित करने में सफल तो हो गई, किन्तु आधुनिकतम सभ्यता अप्रत्याशित आकांक्षाओं एवं अकल्पनीय विनाश के कारणों को खुला निमन्त्रण भी दे बैठी। भारतीय मनीषियों की इस बारे में चेतावनी को सोरोकिन, टायनबी, डोस्टोवस्की, जार्ज बर्नाड शा, शूँम पीटर, गोर्की, आईन्स्टीन तथा अरविन्द ने अपने महान साहित्यों में मुखरित किया है।

अतः हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि सम्पत्ति के असीमित उत्तराधिकार के विद्यमान सारे के सारे कानून विवेकहीनता की परिधि में निहित है। उन पर न केवल अंकुश लगाने की आवश्यकता है वरन् उनमें अमूलचूल परिवर्तन की तात्कालिक आवश्यकता है। सच्ची समाजोपयोगी क्रान्ति तभी सम्भव है जब ऐसे जड़वादी, प्रपीड़क और समाजघाती असीमित उत्तराधिकार कानूनों को अविलम्ब निरस्त किया जाये। अतः मेरी मान्यता है कि कोई भी राज्य यदि वास्तविक रूप से समाज हित की व्यवस्था स्थापित करने की घोषणा करता है तो उसे निर्भय होकर यह घोषणा करनी पड़ेगी कि प्रकृति विरोधी तथा मानव के कल्याण के लिए सड़ते हुए नासूर सिद्ध होने वाले असीमित उत्तराधिकार के कानूनों का समूल नाश किया जाये। अतः हमारी मांग है कि "संसार के देशों में सम्पत्ति के उत्तराधिकार को कानून द्वारा मर्यादित (सीमित) करो। तुम ऐसा करने पर अपना शोषण और प्रपीड़ित करने वाली व्यवस्था के विनाशकारी पाश से मुक्त हो जाओगे। मानव और समाज का सर्वतोन्मुखी एवं सर्वोत्तम सुख इसी में निहित है कि एक आवाज से हम सब मांग करें कि हमें वर्तमान समाज के असीमित उत्तराधिकार के कानूनों के राक्षसी शिकंजे से अविलम्ब मुक्ति दिलाई जाये। इस प्रकार किसी भी सुसभ्य समाज की सच्ची प्रकति की कामना करने वाले राज्य का मात्र एक सूत्र कार्यक्रम यह होना चाहिये कि वर्तमान असीमित उत्तराधिकार कानूनों को उसके सिंहासन से खींच कर धरती पर पटक दिया जाये ताकि यह चूर-चूर होकर अपनी समाधि से एक नये समाज के सृजन का सूर्योदय देख सके। जो निरन्तर प्रकाशमान रहे, जहां दुख, दर्द, शोषण, प्रपीड़न की कोई झीनी छाया भी अपना अस्तित्व रखने में नाकाम रहे।

स्वदेशी आर्थिक दर्शन प्रकृतिवादः-

प्रकृतिवाद आर्थिक दर्शन का आधार भारतीय अध्यात्मवाद है। भारत के पिछले दस हजार वर्षों के इतिहास में सभ्यता तथा संस्कृति के जो श्रेष्ठ उदाहरण सामने आये उनसे इसे शक्ति मिली है। "राज्यम् मूलम अर्थम्" अर्थात् आर्थिक दर्शन के अनुरूप ही समाज रचना होती है तथा आर्थिक दर्शन ही समाज की नैतिकता, संस्कृति तथा सभ्यता को दिशा देने में निर्णायक भूमिका निभाता है।

भारतीय दर्शनों में स्पष्ट रूप से पारिवारिक आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति का संचय करना गलत बताया गया है। वेदों, पुराणों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत तथा समूचे भारतीय साहित्य में इस बात को हजारों प्रकार से समझाया गया है। भारत के छोटे-छोटे गांवों तक में हजारों लोकोक्तियाँ इस सम्बन्ध में हैं।

उदाहरण के तौर पर :-

(१) कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय, यह खाए बौरात है वह पाए बौरात।

(२) पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम, दोऊ हाथ उलीचिये यही सन्तों का काम।

पश्चिमी पूंजीवादी तथा साम्यवादी दोनों आर्थिक दर्शन गलत है। पश्चिमी पूंजीवादी आर्थिक दर्शन में असीमित उत्तराधिकार के दर्शन का दोष घुसा हुआ है। इसी कारण समाज सीमाहीन धन संचय की दौड़ में अन्धा हो जाता है। परिणामस्वरूप हजारों समस्याओं का जन्म होता है। पश्चिमी पूंजीवाद के दोषों की प्रतिक्रिया स्वरूप साम्यवादी दर्शन सामने आया। इसमें भी उपभोग के साधनो का असीमित उत्तराधिकार माना जाता है। अतः यह भी गलत है। इसलिये साम्यवाद को "सरकारी पूंजीवाद" के नाम से भी जाना जाता है।

जब तक इन गलत विदेशी आर्थिक दर्शनों का प्रभाव भारत की समाज व्यवस्था पर रहेगा। भारत में विदेशी सभ्यता तथा संस्कति हो बढेगी, क्योकि आर्थिक दर्शन ही समाज की नैतिकता, संस्कृति तथा सभ्यता को दिशा देता है। अतः यदि हमारी अन्तर्आत्मा भारतीय सभ्यता को उपनाना चाहती है तो इन विदेशी दर्शनों की मानसिक गुलामी से छुटकारा पाना होगा। हमे यह तथ्य स्पष्ट रूप से जानना तथा समझना चाहिये कि अभी तक भारत को केवल नकली (आधी अधूरी) राजनैतिक आजादी मिली है। आर्थिक, मानसिक, दार्शनिक तथा सांस्कृतिक गुलामी की बेड़ियां तोडना अभी बाकी है।

कार्ल मार्क्स ने साम्यवादी समाज क आर्थिक रूपरेखा नहीं बनाई:-

महर्षि कार्ल मार्क्स ११ वीं शताब्दी के महान दार्शनिक थे! उन्होने विश्वविख्यात पुस्तक "दास केपीटल" की रचना की जिसका अब हिन्दी संस्करण " पूंजी" के नाम से उपलब्ध है। पूंजी में उन्होने पूजीवाद के गुण दोषों की छानबीन की। उसमें उन्होने "अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त" की व्याख्या की तथा तथा "दृव्यात्मक भौतिकवाद" के बारे में लिखा। उनकी भविष्यवाणी के अनुसार पूंजीवाद अपने ही दोषों के कारण नष्ट हो जायेगा तथा यह काम खूनी क्रान्ति के द्वारा होगा।

यह सब बातें सहीं हैं, साथ ही यह तथ्य भी सही है कि रूस में पूंजीवाद के नाश के बाद नये साम्यवादी समाज की आर्थिक रूपरेखा इन्होनें नहीं बनाई। यह बात हम नहीं कर रहे अपितु स्वयं उनके शिष्य लेलिन ने ही कही है कि कार्लमार्क्स ने साम्यवादी समाज की आर्थिक रूपरेखा नहीं बनाई।

मार्क्सवाद तथा साम्यवाद की भिन्नता:

साम्यवादियों द्वारा यह भ्रम जानबूझ कर फैला रख गया है कि मार्क्सवाद तथा साम्यवाद में कोई फर्क नहीं हैं। वास्तव में मार्क्सवाद में एक आर्थिक दर्शन है जबकि

प्राकृतिक दर्शन बनाम अन्य आर्थिक दर्शन

निम्न सारिणी से प्रकृतिवादी आर्थिक दर्शन की अन्य दर्शनों से मौलिक भिन्नता तथा श्रेष्ठता स्पष्ट होती है।

दर्शन का नाम	सम्पत्ति का व्यक्तिगत उत्तराधिकार हो या नहीं	चल सम्पत्ति का स्वामित्व किसके पास हो। व्यक्ति, सरकार अथवा समाज	अचल सम्पत्ति का स्वामित्व किसके पास हो। व्यक्ति सरकार अथवा समाज	बिक्री का, उत्पादन कर, चुंगी, आय कर, सम्पत्ति कर, मृत्यु कर, आदि हो या नहीं	वयस्क होने तक बच्चे माँ बाप के पास ही रहेंगे पर उनकी आर्थिक जिम्मेदारी किसी हो। व्यक्ति की या सरकार की या समाज की	उत्पादन के साधनों पर किसका स्वामित्व हो व्यक्ति का, सरकार का या समाज का
प्राकृतिक दर्शन अनुरूप आर्थिक व्यवस्था का नाम "प्रकृतिवाद"	नहीं हो	केवल व्यक्ति के पास हो	केवल समाज के पास हो	किसी भी प्रकार का कर नहीं हो। जमीन, मकान के किराये से सरकार का खर्च	समाज की	चल यानि कारखानों पर व्यक्ति का, अचल यानि जमीन पर समाज का
पूंजीवाद	हो	तीनों के पास हो	तीनों के पास हो	सभी प्रकार के कर हों	व्यक्ति की	व्यक्ति का
गांधीवाद	हो	तीनों के पास हो	तीनों के पास हो	सभी प्रकार के कर हों	व्यक्ति की	व्यक्ति का
समाजवाद	हो	तीनों के पास हो	तीनों के पास हो	सभी प्रकार के कर हों	व्यक्ति की	मिश्रित अर्थव्यवस्था द्वारा व्यक्ति तथा सरकार दोनों का हो
समाजवाद	हो	तीनों के पास हो	तीनों के पास हो	सभी प्रकार के कर हों	व्यक्ति की	केवल सरकार का

साम्यवाद में समाज की आर्थिक रूपरेखा है। इसी कारण पूंजीवादी व्यवस्था समाप्त करने के बाद हर साम्यवादी देश ने अपने-अपने ढंग से समाज की आर्थिक रूपरेखा बनाई। जब भी साम्यवादी देशो के आर्थिक हितों में टकराव होता है तो उनमें आपस में युद्ध होते हैं। भारत में भी अनेकों प्रकार के साम्यवादी दल है। यद्यपि वे सभी मार्क्सवादी आर्थिक दर्शन को मानते है पर हर दल अपने-अपने ढंग से साम्यवादी समाज की आर्थिक रूपरेखा चाहता है। यही मतभेद उनके आपसी झगड़े का कारण भी है।

समाज रचना का चौथा प्राकृतिक सिद्धान्त "सत्कार्यवाद"

कपिल मुनि द्वारा प्रतिपादित सांख्य दर्शन भारत का अति प्राचीन दर्शन है। सत्कार्यवाद सांख्य दर्शन का सर्वमान सिद्धान्त है। इसे विस्तार से समझने के लिये प्राकृतिक दर्शन प्रथम खण्ड देखिये। महान जर्मन दार्शनिक जार्ज विलियम फैडरिक हैगल ने इसका अध्ययन किया। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि हैंगल की मेज पर सांख्यकारिका का जर्मन अनुवाद रखा रहता था। सत्कार्यवाद के सिद्धान्त में से हैंगल ने "द्वन्दात्मकता" का सिद्धान्त विकसित किया। द्वन्दात्मकता क्रान्ति की एक प्रक्रिया है। इसके अनुसार कोई भी एक अवस्था आप ले लीजिये। इस अवस्था को क्रिया कहा जाता है। फिर क्रिया तथा प्रतिक्रिया में संघर्ष होता है। फलस्वरूप एक नई चीज बनती है। इसको संश्लेषित क्रिया कहते है। महर्षि कार्ल मार्क्स ने इसी द्वन्दात्मकता का उपयोग अपने आर्थिक दर्शन में किया। उन्होने इस दर्शन का प्रयोग धन जैसी भौतिक व्यवस्था के लिये किया। इसीलिये उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त को "द्वन्दात्मक भौतिकवाद" के नाम से जाना जाता है।

द्वन्दात्मक भौतिकवाद के अनुसार आर्थिक दर्शनों की परिणति प्रकृतिवादः-

महर्षि कार्ल मार्क्स के "द्वन्दात्मक भौतिकवाद" के सिद्धान्त के अनुसार ही हम कहते हैं कि पूंजीवाद दर्शन एक क्रिया थी। इसमें व्यक्गित असीमित उत्तराधिकार के दर्शन का दोष था पर इसे महषि कालमार्क्स ने ठीक से नहीं समझा। उनके द्वारा समूचे पूंजीवाद को ही गलत मानने की प्रतिक्रिया स्वरूप साम्यवादी दर्शन बना तथा बढ़ा। अब दोनों के संघर्ष के फलस्वरूप "संश्लेषित क्रिया" जन्मी है। इस संश्लेषित क्रिया का सरल नाम प्रकृतिवाद है। इस युग के सत्य तथा अहिंसा के अग्रदूत महात्मा गांधी ने भी स्पष्ट रूप से पूंजीपतियों को ही चेतावनी दी थी कि "यदि धनिक लोगों ने स्वेच्छा से अपनी सम्पत्ति सुपात्रों में नहीं बांटी तो रक्त रंजित खूनी क्रान्ति अवश्य होगी।

यह सत्य जान लेने पर दैवी पूंजीवादी विचारधारा के लागे स्वतः ही प्रकृतिवाद के समर्थन में आगे आवेंगे।

बुद्धिजीवियों तथा भ्रमित पूंजीवादियों की कुछ शंकाओं का निवारणः-

बुद्धिजीवियों तथा पूंजीवादियों के मन में बहुत सारे प्रश्न उठ सकते हैं इस छोटी सी पुस्तक में सभी का जवाब देना सम्भव नहीं, कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न तथा उनके उत्तर हम लिख रहे हैं। फिर भी यदि कोई जिज्ञासू किसी अन्य प्रश्न के उत्तर जानने में रूचि रखता हो तो हमें जवाबी पोस्टकार्ड, अन्तर्देशीय पत्र या लिफाफे के साथ अपने प्रश्न लिख भेजें हम जवाब अवश्य देंगे।

प्रश्नः यदि कोई व्यक्ति उत्तराधिकार में बच्चों को धन न देकर कर्ज छोड़ जाये तो कर्ज कौन वापस करेगा?

उत्तरः प्रकृतिवाद का मूल उद्देश्य समाज के सभी बच्चों को विकास के समान भौतिक अवसर दिलवाना है। उत्तराधिकार में यदि कर्ज मिला तो इसमें बाधा पड़ेगी, अतः समाज हित में कर्ज देने वाला व्यक्ति इसे डूबा हुआ मान ले। इसी भावना के अनुसार जानी मानी लोकोक्ति है। ''नेकी कर और दरिया में डाल''

इस पुस्तक को पढ़ने से स्पष्ट हो जायेगा कि प्रकृतिवादी समाज में सभी बच्चों की शिक्षा दीक्षा, चिकित्सा, इत्यादि की पूरी जिम्मेदारी सरकार की होगी। हर एक को रोजगार देने की जिम्मेदारी भी राज्य सरकार की होगी। फिर भी जिसको कर्ज की जरूरत पड़ें वह निश्चय ही आलसी तथा मूर्ख है। ऐसे लोग समाज का बोझ होते है। इनके प्रति किसी को भी किसी प्रकार की दया अथवा सहानुभूति नहीं दिखानी चाहियें।

प्रकृतिवादी समाज में उत्तराधिकर में धन देने की अधिकतम सीमा एक किलो सोने के बराबर के मूल्य की सम्पत्ति है। जिन व्यक्तियों के पास बहुत अधिक धन है तथा यदि वे समझते हैं कि कर्ज मांगने वाला व्यक्ति वास्तव में बुद्धिमान तथा मेहनती है, केवल दुर्भाग्यवश ही गरीबी की स्थिति में आ गया है तो वे अपना सामाजिक दायित्व समझते हुए उसे कर्ज दे सकते हैं। जब तक कर्ज लेने वाला व्यक्ति जीवित है कर्ज को वापस लेने के सारे कानूनी अधिकार कर्ज देने वाले को प्राप्त हैं। जिन लोगों के पास बहुत ज्यादा धन है, यदि वे ऐसे कामों में खर्च नहीं करेंगे तो उनके मरने पर उनका धन उनके बच्चों में प्रति बच्चे को उत्तराधिकार की अधिकतम सीमा के हिसाब से ही बंटेगा। शेष धन तो समाज हित में ही खर्च होगा। धनिक लोगों पर इस दबाव के कारण वास्तव में दुर्भाग्य के मारे व्यक्यिों को कर्ज मिलना मुश्किल न होगा। परन्तु मूर्ख तथा निकम्मों को कर्ज नहीं मिलेगा। इसी भावना के अनुसार कविवर रहीम दास जी ने कहा था।

रहिमन वे नर मर चुके, जो कंहु मांगन जाय।
इनसे पहले वे मरे, जिन मुख निकसत नाय।

प्रश्नः उत्तराधिकार सीमित करने पर पूंजी निर्माण में पूंजीपति रूचि नहीं लेगे तब समाज में उद्योग धन्धों के लिये पूंजी कहां से आयेगी?

उत्तरः समाज में "आवश्यक जमा योजना" लागू की जायेगी। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय का एक भाग (जो कि आर्थिक विशेषज्ञ विचार-विमर्श के द्वारा तय कर सकते है) सरकारी बैंक यानि रिजर्व बैंक में जमा करायेगा। धन जमा कराने वाले व्यक्ति को जमा राशि पर प्रचलित दर से ब्याज मिलेगा। इस मूल धन को वह व्यक्ति अपने जीवन काल में खर्च नहीं कर सकता पर उसका ब्याज उसके खाते में जमा होता रहेगा, जिसे वह खर्च कर सकता है।व्यक्ति मूलधन नहीं निकाल सकता। व्यक्ति के मरने पर वह मूलधन तथा ब्याज की बची हुई राशि उसके बच्चों को उत्तराधिकार में मिल जावेगी। पर किसी भी अवस्था में बच्चों को उत्तराधिकार में एक किलो सोने के मूल्य से ज्यादा की सम्पत्ति नहीं मिलेगी। इस प्रकार एक पीढ़ी के बाद देश में हर एक व्यक्ति के खाते में एक किलो सोने के बराबर मूल्य की सम्पत्ति जमा हो जावेगी तथा उसके ब्याज से ही उसका काम चल जायेगा।

११८२ के आंकड़ों के आधार पर मान लीजिये आजकल भारत की जनसंख्या का चौथाई भाग यानि करीब २४ करोड़ व्यक्तियों में अधिकांश की आय प्रायः बहुत कम है तथा कुछ की बहुत ज्यादा। मोट तौर पर ये मान लें कि "आवश्यक जमा योजना" के प्रभाव से औसत जमा राशि "प्रति व्यक्ति के पूरे जीवन काल में" १,००,००० रूपये हो तो पूरे भारत के लिये यह राशि २४ करोड़, १,००,००० अर्थात् २४,००,००० करोड़ रूपये होगी। रिजर्व बैंक में जमा किये हुये थे। २४ लाख करोड़ रूपये भारत की पूंजी की आवश्यकता की पूर्ति के लिये पर्याप्त हैं। आवश्यकता पड़ने पर आवश्यक जमा योजना में निर्धारित प्रति व्यक्ति के आय के भाग को घटाया या बढ़ाया भी जा सकता है। रिजर्व बैंक केवल इन गैर सरकारी बैंको को व्यापारिक शर्तो के अनुसार धन दे तथा ये व्यपारिक बैंक सारे समाज को व्यापारिक शर्तो पर धन दें।

प्राकृतिक व्यवस्था में उत्तराधिकार में धनी परिवार के हर बच्चे को एक किलो सोने के मूल्य की सम्पत्ति तो मिलेगी ही। यदि ऐसे १० बच्चे भी अपनी पूंजी आपस में मिला दें तो उसे पूंजी से प्राईवेट लिमिटेड कम्पनी या सहकारी समिति बना कर उद्योग या व्यापार किया जा सकता है। उन्हें अधिक आवश्यकता पडने पर व्यापारिक बैंको से भी धन व्यापारिक शर्तो पर मिल जायेगा। गरीब परिवार के जिन बच्चों को उत्तराधिकार में धन बिल्कुल न मिला हो उनहें पूंजी देने के लिये बैंक को बहुत गहराई से उनके स्कूल तथा कॉलेज से उनके चरित्र का पता लगाना होगा। जो बच्चे स्कूल व कॉलेज में सदा सच बोलते हों, जिनमें नेतृत्व के गूण हों, उन्हें बैंक बिना जमानत पर भी ऋण दे सकता है। बैंक के धन की सुरक्षा की दृष्टि से जब तक वो बैंक का पूरा पैसा ना चुकावे तब तक

उनके उद्योग में बैंक का कोई कर्मचारी, चौकीदार या अकाउन्टेंट, नियमित रूप से जाकर निगरानी कर सकता है। जब उत्तराधिकार समाप्त हो जायेगा तो समाज के सभी बच्चों को इसी प्रकार धन मिलेगा। यह व्यवस्था शीघ्र ही ऐसे मानव समाज का निर्माण करेगी जिसमें व्यक्ति अपने ही धन से व्यवसाय करेगा। उसे बैंक के धन की जरूरत ही नहीं होगी।

प्रश्नः उत्तराधिकार सीमित कर देने के प्रगति रूक जावेगी, तब क्या होगा?

उत्तरः प्रगति शब्द का स्पष्ट अर्थ हमें समझाना होगा। प्रकृतिवाद के अनुसार व्यक्ति अपने जीवन काल में चाहे जितना धन कमाये, व्यापार उद्योग बढ़ाये, धन चाहे जमा करे या खर्च करे उसे हर तरह की पूरी आजादी है। वह केवल उत्तराधिकार में अपने बच्चों को सीमा से अधिक सम्पत्ति नहीं दे सकता। जो व्यक्ति केवल अपने परिवार की भलाई की सोचता है तथा समाज हित की परवाह नहीं करता है। वह यदि चाहे तो अपने उद्योग व्यापार आदि को बेच डाले अन्य दूसरे व्यक्ति उसे चलायेगें।

प्रश्नः तब उद्योग व्यापार आदि को कौन चलायेगा?

उत्तरः यह कल्पना भ्रमपूर्ण है कि पूंजीपति उद्योग तथा व्यापार चलाते हैं। बड़े उद्योग व्यापार आदि को पूंजीपति नहीं वरन उद्यमी चलाते हैं। इन्हें मैनेजर, व्यवस्थापक, डायरेक्टर आदि के नाम से जाना जाता है। इन्हें के पास उद्योगों को चलाने का वित्तीय, तकनीकी तथा व्यावहारिक ज्ञान होता है। दैवी तथा भ्रमित पूंजीवादी तो स्वयं ही उद्यमी होते हैं, पर राक्षसी पूंजीवादी केवल पूंजीपति ही होते हैं। उनमें उद्यमशीलता बिल्कुल नहीं होती। वे तो केवल जोंक की तरह समाज का खून चूसते है। ऐसे समाजद्रोही पूंजीपति यदि आर्थिक क्षेत्र से हाथ खींच भी लें तो आर्थिक क्षेत्र में उन्होनें जो एकाधिकार बना रखा था उसे समाप्त हो जाने पर प्रारम्भिक कुछ कठिनाइयों के बाद समाज की आर्थिक प्रगति बहुत तेजी से होगी।

प्रश्नः विश्व के बाजार की आर्थिक प्रतिस्पर्धा में पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था के मुकाबले में क्या प्रकृतिवादी आर्थिक टिक पायेगी?

उत्तरः जिस प्रकार मानव का अस्तित्व प्रकृति के सामने कुछ नहीं हैं, उसी प्रकार पश्चिमी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था प्रकृतिवादी अर्थव्यवस्था के सामने कुछ भी नहीं। जिसे प्रकृतिवादी दर्शन के सभी रहस्यों का भेद मालूम हो और जो पश्चिमी पूंजीवाद को भी समझता हो ऐसा व्यक्ति यदि राष्ट्र का संचालन करे तो उस राष्ट्र की सम्पूर्ण जीत न केवल आर्थिक वरन सभी क्षेत्रों में सुनिश्चित है।

हमें आशा है कि बुद्धिजीवियों तथा भ्रमित पूंजीवादियों की शंकाओं का निवारण हो गया होगा। यदि फिर भी कुछ शंका है तो हमसे पत्र व्यवहार करें अथवा स्वयं मिलें। निश्चय ही भ्रम निवारण होने पर वे पूरे मन से प्रकृतिवादी आन्दोलन को सफल करने में जुट जायेंगे।

राक्षसी पूंजीवादियों द्वारा जानने तथा मनन करने योग्य प्रकृति के कुछ तथ्यः-

मौत सबको आती है तथा मरने पर धन व्यक्ति के साथ नहीं जाता है। जो व्यक्ति पैदा हुआ है अवश्य ही मरेगा। समाज द्रोही लोग अपने जानने वालों को मरता हुआ हर रोज देखते हैं फिर भी वे समाज को हानि पहुंचाने से बाज नहीं आते। इस समय दुनिया में ५५० करोड़ इन्सान हैं जो अगले वर्षो में मर जायेंगे। पिछले ५० हजार वर्षो से मानव पैदा होता तथा मरता रहा है। समाज विरोधी काम द्वारा धन कमाने वालों को यह बात अपने दिल में बैठा लेनी चाहिए कि कोई भी व्यक्ति अपनी धन दौलत मरने पर अपने साथ नहीं ले जा सकता।

मरते समय सिकन्दर महान की अन्तिम इच्छा थी कि मरने के बाद उसकी लाश को पूरे शहर में घुमाया जाये तथा उसकी लाश के पीछे उसकी लूट का माल ले जाया जाये। जनता ने देखा कि लाश की दोनों मुट्ठियां खुली हुई थी उसकी हथेली पर कुछ नहीं था, लाश के पीछे-पीछे वेश कीमती लूट का माल था जो सिकन्दर के साथ न जा सका। अतः जिन व्यक्तियों के पास अपनी निजी आवश्यकता के लिए काफी पैसा है फिर भी वे कुकर्म करके समाज द्रोह करके धन इकट्ठा करने मे लगे हुए हैं तो उनसे बड़ा मूर्ख कौन होगा?

उत्तराधिकार में धन छोड़ने से आने वाली पीढ़ियों का नाश होता हैः-

मानव जाति के पूरे इतिहास से स्पष्ट होता है कि जिन व्यक्तियों ने सीमाहीन धन संचय करके धन अपने बच्चों को सौंपा उनके बच्चे बिगड़ गए तथा बरबाद हो गये। महान मुगल साम्राज्य के वंशज आज लखनऊ में रिक्शा-तांगा चलाते हैं। अग्रंजों का अजेय साम्राज्य जिसमें कभी सूर्य अस्त नहीं होता था आज नहीं रहा। उत्तराधिकार में छोड़ा हुआ धन बच्चों के लिये धीमे जहर का काम करता है।

तीसरे विश्व युद्ध द्वारा सबकी मौत की सम्भावनाः-

1982 के आंकड़ों तथा सूचनाओं के अनुसार तीसरे विश्व युद्ध के बादल दुनियां पर मंडरा रहे हैं। कई देशों के पास आणविक बम हैं। यह युद्ध आणविक बमों द्वारा लड़ा जावेगा। प्रत्येक वर्ष इन बमों की संख्या बढ़ती जा रही है और अब उनकी संख्या ५० हजार के आस पास तक पहुंच चुकी है। उनकी सम्पूर्ण विस्फोटक शक्ति मोटे तौर पर २० अरब टन टी.एन.टी. के बराबर है। यानी जापानी शहर हिरोशिमा पर अगस्त 1942 में छोड़ा गया अमरीकी परमाणु बम की विस्फोटक शक्ति से कोई १६ लाख गुनी ज्यादा शक्ति। अतः विश्वयुद्ध होने पर सभी की मौत निश्चित है। युद्ध होने पर तो सबसे पहले बड़ें शहरों पर हवाई हमला होगा जिसमें पूंजीपति वर्ग

रहता है। अतः उसके बचने की तो कोई सम्भवना नहीं है। जब युद्ध होने पर सभी का नाश होना है तो यह मूर्खता पूर्ण धन संचय किस के लिये?

ब्रह्माण्ड में मानव का अस्तित्व तथा जीवन का काल कुछ भी नहीं:-

राक्षसी पूंजीपति जमीन के छोटे टुकड़े के लिये, फैक्ट्री के लिये, दुकान के लिये दिन रात प्रपंच रचते है। ये सब के सब इस पूरी पृथ्वी के बहुत छोटे अंश है। इस पृथ्वी से १३ लाख गुना बड़ा सूर्य है। सूर्य के करोडो गुना बड़े करोड़ों तारे इस ब्रह्माण्ड में है। हाल ही में औज़ोर नामक तारे का पता खगोल शास्त्रियों ने लगाया है। उसके बारे में वैज्ञानिकों का कहना है कि सूर्य एक करोड़ वर्षों में जितना ताप ब्रह्माण्ड में विर्कीण करता है इतना ताप, उस औज़ोर नामक तारे से १ सैकिन्ड में विर्कीण होता है। अतः उस तारे के आयतन का अनुमान लगाने के लिये आपको हिसाब लगाना पड़ेगा कि एक करोड़ वर्षो में कितने सैकिन्ड होते हैं। हिसाब से जो संख्या आए यह तारा सूर्य से उतना ही गुना बड़ा है। यह अति दूर होने के कारण यह हमें छोटा सा तारा मात्र ही दिखाई देता है।

हमारा यह दिखाई देने वाला ब्रह्माण्ड ही इतना बड़ा है कि जिसकी कल्पना करना भी सम्भव नहीं। भारतीय दर्शन के अनुसार तो इस प्रकार के अन्य ६ ब्रह्माण्ड हैं। इन सब में हमारी पृथ्वी की तथा हमारी क्या हस्ती है? अतः सीमाहीन धन संचय की बजाय हमें अपनी शक्ति का सदुपयोग समाज हित में करना चाहिये।

५० हजार ग्रहों पर मानव से ज्यादा विकसित सभ्यताएं बन चुकी हैं:-

अपने दिखाई देने वाले ब्रह्माण्ड में हमारी पृथ्वी के अलावा हजारों ग्रहों पर मानव से भिन्न प्रकार के जीव बसते हैं। उनकी सभ्यता तथा वैज्ञानिक ज्ञान मानव से कहीं ज्यादा विकसित है। वैज्ञानिक के अनुसार इस ब्रह्माण्ड से कम से कम ५० हजार ग्रह ऐसे हैं जिन पर मानव से ज्यादा विकसित वैज्ञानिक सभ्यताएं है। इस विषय पर अनेकों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। हम केवल संक्षेप में कुछ तथ्यों का उल्लेख कर रहे हैं। अपने इस ब्रह्माण्ड से काफी दूर ६ और ब्रह्माण्ड है, इन के बाने में अभी हम ज्यादा नहीं जानतें।

१. केलिफार्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर शेवेर के अनुसार मंगल तथा शुक्र ग्रह पर उड़नशील जीवन है। उनके अनुसार वहां हवा में तैरते हुए नगर हैं। यह सम्भव है वे ही धरती पर उड़न तश्तरियां भेजते है। बृहस्पति ग्रह पर भी इसी प्रकार जीवन की सम्भावना है। शनि ग्रह के चन्द्रमा टक्टन पर भी ऐसी परिस्थितियां हैं जिससे वहां भिन्न प्रकार का जीवन हो सकता है।

२. कार्लसांगो की विश्वविख्यात पुस्तकों में भिन्न ग्रहों पर जीवन के प्रमाण दिये गये हैं। उनमें से प्रमुख पुस्तकों के नाम "दि ड्रेग्न्स ऑफ हेडन", "ब्रोकाज ब्रेन" तथा "कास्मोस" हैं।

३. खगोल विध्या के विश्वविद्यालय वैज्ञानिक कास्टेन्टिन राईडिन ने अन्तरिक्ष में भ्रमणशील ७२०० महा उद्घोषों को टेप कर लिया है। इन शब्द धाराओं की आवाज जीवधारियों की चीख पुकार से मिलती जुलती है।

४. "बीप-बीप" ध्वनि का रहस्यः-

अन्तरिक्ष से लगातार बीप-बीप के ध्वनि संकेत आते रहते हैं। इनके मध्य में ठीक ३.१६ सैकिन्ड का अन्तर होता है। ये उसी प्रकार के ध्वनि संकेत होते हैं जिस प्रकार के ध्वनि संकेत हम भारत में प्रतिदिन अंग्रेजी के समाचारों के पहले रेडियो पर सुनते हैं। बी.बी.सी. लन्दन से भी समाचारों से पहले इसी प्रकार के ध्वनि संकेत दिये जाते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि अन्तरिक्ष में किसी ग्रह पर निवास करने वाले बुद्धिमान प्रणी हमसे सम्पर्क साधने का प्रयत्न कर रहे हैं इसी कारण से वे प्राणी पृथ्वी पर लगातार ये संकेत भेजते हैं।

५. बर्लिन पुस्तकालय में रखा "डैड सी" तथा "मेडिट्रेनियम" क्षेत्र का नक्शाः-

यह नक्शा १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में तुर्की नौ सेना के एडमिरल पीटी केईस को कहीं से प्राप्त हुआ था। इस नक्शे में डैड सी तथा मेडिट्रेनियम क्षेत्रों का बिलकुल सही चित्रण है। वर्तमान समय के वैज्ञानिक अपने उपग्रहों के कैमरे से भी उतना सही चित्र नहीं खींच सकते। यह नक्शा तो किस ग्रह पर बैठ कर अत्यन्त शक्तिशाली कैमरे की सहायता से खींचा हुआ जान पड़ता है। १७वीं शताब्दी में जब कि मानव की प्रगति बहुत कम थी, ऐसा नक्शा बनाना सम्भव नहीं था। अनुमान है अन्य ग्रहों से धरती पर खोजबीन के लिये आए हुये यात्रियों द्वारा यह नक्शा यहां छूट गया।

६. पेरू देश की तिआहुन सभ्यताः-

भारत में मोहनजोदड़ो, हड़प्पा तथा मिश्र में नील नदी तथा चीन में मिले प्राचीन सभ्यताओं के अवशेष ६ हजार वर्ष से ज्यादा पुराने नहीं हैं। अतः हम मानव जाति का पिछले ६ हजार वर्षो का इतिहास ही जानते हैं, पर दक्षिण अमेरिका के पेरू नाम के देश में 'तिआहुन" नामक क्षेत्र है। इसका धरातल समुद्र से १३००० फीट ऊंचा है। इतनी ऊँचाई पर ऑक्सीजन की मात्रा बहुत कम होती है। इसी कारण वहां पर कोई शारीरिक श्रम करना सम्भव नहीं। वहां पर ६ हमार वर्षो से भी अधिक पुराने एक नगर के अवशेष मिले हैं। इसकी चार दीवारी १०० टन के भारी पत्थरों पर ६० टन भारी पत्थरों को रखकर बनाई गई है। इन पत्थरों का धरातल इतना चिकना है कि उनमें गई रत्ती का अन्तर नहीं दिखता। इस काम को पाषाण युग से पहले मनुष्य ने किस प्रकार किया होगा। इसी नगर में एक २४ फि ऊँची और २० टन भारी ऐसी मूर्ति है जो एक ही पत्थर की बनी है। इस चारदीवारी तथा मूर्ति पर रहस्यमय संकेत चित्र हैं।

इन निर्माण कार्यो पर प्रकाश डालने वाली पुस्तक एच.वेलसी और पी.एलन के संयुक्त प्रयासों से लिखी गई जो कि 1941 में प्रकाशित हुई थी। इसका नाम है "दी ग्रेट ऑडिअल ऑफ तिआहुनकी"। इस पुस्तक में प्रमाणों सहित सिद्ध किया गया है कि यह नगर अन्तरिक्षवासियों ने बनाया था। इस नगर की चारदीवारी, मूर्ति तथा अन्य अवशेषों में खगोलीय जानकारियों रहस्यमय ढंग से अंकित है।

७. ईस्टरद्वीप की कलाकृतियाँः-

दक्षिण अमेरिका के ही अन्य देश चिली से २५०० मील दूर ईस्टर नामक द्वीप है। किसी भी अन्य भूमि से इस टापू की निकटतम दूरी २००० मील है। वहां मुश्किल से २० आदिवासी रहते है। ईस्टर द्वीप में ६६ फीट ऊँची ४० टन भारी उत्तम कलाकृति की अनेकों मूर्तियां है। ज्वाला मुखी का कठोर लावा ही वहां पत्थर के रूप में पड़ा हुआ है। उसे किसने काटा? कैसे काटा? इतनी भारी मूर्तिया कैसे बनी? इतनी बारीक कलाकृति किसने बना दी "आकू वाकू", "चेरियट्स ऑफ गार्डस", "गाईड फ्राम दी आउटर स्पेस" आदि ग्रन्थों के अनुसार अन्य ग्रह के निवासियों ने धरती पर आकर ये मर्तियां बनाई है।

८. चीन तिब्बत सीमा पर अन्तरिक्ष्वासियों की कब्रेंः-

सन् १२३७ में चीन-तिब्बत सीमा पर पहाड़ की गुफाओं में सीधी कतार में आश्र्चयजनक कब्रें पाई गई हैं। खुदाई करने पर वहां जीवों के कंकाल के सिर बहुत बड़े तथा शरीर छोटे थे। सोवियत संघ की "स्पूतिनिक" नामक पत्रिका में पीगि के प्रोफेसर उस्नम उनतुई का लेख इस सम्बन्ध में छपा था। इनके अनुसार १२ हजार वर्ष पूर्व कोई अन्तरिक्षवासी पृथ्वी पर आये थे। उनके यान धरती पर आकर खराब हो गये जिनकी वो मरम्मत नहीं कर सके। उन्होनें धरती के मानवों से मित्रता करने की कोशिश की, पर सफल न हो सके। ये कब्रें उन्हीं के अवशेष हैं। कब्रों के पास समीपवर्ती चट्टानों पर कुछ अभिलेख तथा चित्र भी हैं जो इसी सत्य की ओर संकेत करते है।

नोटः- असीमित उत्तराधिकार के गलत दर्शन के कारण मानव जाति हमेशा आपस में ही युद्ध करती रहीं है। भला वह अन्तरिक्षवासियों से मित्रता कैसे कर सकती हैं?

९. उड़नतश्तरियों का रहस्यः-

अभी कुछ समय पूर्व अमेरिका में एक विशेष प्रकार की उड़न तश्तरियों का प्रसंग चर्चा का विषय बना रहा। इसके बारे में कहा जाता है कि अन्तरिक्ष यात्रियों की लाशें तथा उनके एक विशेष यानों का मलबा भी मनुष्य के हाथ लग गया है।

चार्ल्स र्लिटस और विलियम मूरे ने इस सम्बन्ध में जो तथ्य एकत्रित किय हैं, उन्हें उन्होनें अपनी पुस्तक 'दी सूजवेल इन्सीडेन्ट' में विस्तार से लिखा है। उसके अनुसार ६ जुलाई, 1950 की शाम को ८ बजे न्यू मेक्सिको के निकटवर्ती क्षेत्र में एक अन्तरिक्ष यान टूट कर गिरा। उसके मलबे में कुछ ऐसे प्राणियों की लाशें मिली जो मनुष्य से सर्वथा भिन्न थीं। उन लाशों के सिर गेंद जैसे गोल, आंखे छोटी, इनके आंखों के मध्यवर्ती दायरे अधिक फैले हुए तथा बदन पर बाल बिल्कुल नहीं थे वे सलेटी फ्रेम के कपड़े ओढ़े हुए थे। वह अन्तरिक्ष यान कपड़े जैसी किसी धातु का बना हुआ था, पर हथोडे की चोट से भी नहीं मुड़ता था। उसका मध्य भाग ३० फुट के घेरे की तश्तरी जैसा था। यान का मलबा तथा लाशें सवा मील के घेरे में बिखरी हुई थी। यह सब वहां के सभी निवासियों ने प्रत्यक्ष देखा।

ज्यों ही अमेरिका के उच्च अधिकारियों को इसकी सूचना मिली वे तुरन्त ही सारी लाशें तथा यान का पूरा मलवा समेट कर ले गये। अब इस घटना से सम्बन्धित सभी प्रकार की जानकारी वहां की सरकार द्वारा गुप्त रखी गई है।

१०. "एन्टी-यूनीवर्स" यानि "प्रति-संसार" की झलकः-

अदृश्य संसार इस द्रष्यमान संसार का प्राण है। इसका विस्तार, वैभव एवं सामर्थ्य स्रोत इतना बड़ा है कि दृष्यमान संसार इसका नगण्य सा भाग कहा जा सकता है। पृथ्वी पर जितना जल है उससे ज्यादा जल वायुमण्डल में भाप के रूप में है। इसी प्रकार इस पृथ्वी पर जितने ठोस पदार्थ हैं उनसे ज्यादा मात्रा में वायुभूत हो कर अन्तरिक्ष में उड़ते हैं।

वैज्ञानिकों ने इस दृष्यमान संसार के पीछे विच्छिन्न रूप से गंथे हुए एक दूसरे अदृश्य संसार का अस्तित्व खोज निकाला है। वह सामर्थ्य एवं विस्तार की दृष्टि से सूक्ष्म होने के कारण हर दृष्टि से दृश्यमान संसार से वरिष्ठ पाया गया है। इसे "ऐन्टी-यूनिवर्स" यानि प्रति-संसार का नाम दिया गया है। अब "एन्टी-मैटर" यानि प्रति-पदार्थ आदि के रूप में उसकी सत्ता एवं क्षमता का विस्तृत विवेचन होने लगा है। विज्ञान जगत के दृश्य स्वरूपों से उसकी शक्ति तरंगों वाला अदृश्य क्षेत्र बहुत अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। ईधर, लेसर जैसी विख्यात शक्तियां उसी क्षेत्र की हैं। लेसर किरण का उपयोग विकास तथा विनाश दोनों के लिये किया जा सकता है।

विज्ञान ने मालूम किया है कि पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव अन्य ग्रहों से पृथ्वी पर आने वाले अदृश्य अनुदानों को खींचता है तथा दक्षिण ध्रुव बचे खुचे पृथ्वी के कचरे को अदृश्य रूप से अन्तरिक्ष में फेंकता है। इस अदृश्य अनुदानों का पृथ्वी के जीवधारियों के लिये विशेष महत्व है। पृथ्वी पर बारिश के अलावा अन्तरिक्ष से बहुमूल्य सम्पदा हरदम बरसती रहती है। इसके अनेकों लाभी हमको मिलते रहते हैं। इस अदृश्य प्रति-संसार के सभी रहस्यों की खोजबीन वैज्ञानिक जोरों से कर रहें है। इस पृथ्वी पर मानव के अलावा अंख्य प्रकार

के शरीर धारी जीवन (भारतीय मान्यता के अनुसार चौरासी लाख योनियां) हैं। पर उनकी तुलना में उन अशरीरधारी जीवों की संख्या कहीं ज्यादा है जो आकाश में भ्रमणशील है। यहा चर्चा जीवाणुओं, कीटाणुओं, विषाणुओं आदि की नहीं हो रही, वरन उन सूक्ष्म शरीर धारियों की हो रहीं है जो इस समय भूत स्थिति में रह रहें हैं। जो कभी मनुष्यों की तरह दृश्यमान थे या निकट भविष्य में वैसा ही कलेवर धारण करने जा रहे हैं।

प्रेत, पितर, यक्ष, गन्धर्व, भूत, जिन्न, पिशाच, देव, दानव, ऐसे ही जीवात्मा हैं जो स्थूल शरीर से रहित रहने पर भी सत्ताधारी एवं शक्तिशाली होते हैं। भारतीय पुराणों में उनका विस्तार से विवरण मिलता है।

आजकल पश्चिमी देशों के वैज्ञानिकों ने अशरीरधारी जीवों के सम्बन्ध में खोजबीन के प्रयास जोरो से प्रारम्भ कर दिये हैं। उनके ज्ञान की सीमा वर्तमान समय में यहीं तक है। इसके आगे का ज्ञान हमें भारतीय आध्यात्मवाद द्वारा ही मिल सकता है।

भारतीय आध्यात्मा की झलक :-

भारतीय जनता को भारतीय आध्यात्मवाद के बारे में बहुत कुछ मालूम है, पर इस पुस्तक में विदेशी नागरिकों की जानकारी के लिये इस सम्बन्ध में कुछ सूत्र लिखे जा रहे है। आत्मिक प्रगति के लिय जीव चेतना की सात स्थितियां है।

१. फिजिकल बॉडी "दृश्य कायिक स्वरूप"

२. इथरिक बॉडी "अदृश्य चेतन स्वरूप"

३. एस्ट्रल बॉडी "सूक्ष्मतम दिव्य स्वरूप"

४. सेन्ट्रल बॉडी "मानसगत चेतन स्वरूप"

५. स्प्रिचुअल बॉडी "कारणगत चेतन स्वरूप"

६. कास्मिक बॉडी "देव स्वरूप"

७. बॉडी लेस बॉडी "ब्रह्म स्वरूप" इसी को बन्धनमुक्ति की अवस्था कहते हैं।

जो व्यक्ति साधना द्वारा चेतना का जिस सीमा तक विकास कर लेते हैं उसके अनुपात में ही उनकी क्षमतायें बढ़ती जाती हैं। इसका संक्षेप में विवरण दिया जा रहा है। विस्तार से जानने के लिये पाठकों को भारतीय आध्यात्मिक ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये।

१. फिजिकल बॉडी "दृश्य कायिक स्वरूप"

यह शरीर अनेक तत्वों का बना हुआ है। जन्म से ही प्राण इस शरीर को धारण किये रहता है। मात्र शरीरगत अनुकृतियां ही इसमें विकसित हो पाती हैं। इस जगत के सारे प्राणी आजीवन इसी स्थिति में बने रहते हैं तथा प्रकृति के नियमानुसार स्वचालित जीवन जीते हैं। मात्र मानव ही एक अपवाद हैं, जिसमें चेतना ही गहरी परतों, उच्च्तर अवस्थाओं में प्रवेश करने की क्षमता है।

२. इथरिक बॉडी "अदृश्य चेतन स्वरूप"

दो वर्ष की आयु से मानव शरीर में इथरिक बॉडी "अदृश्य चेतन स्वरूप" विकसित होने लगता है। अपना-पराया, राग-द्वेष, मिलन-वियोग, की अनुभूति इसी माध्यम से होती है। आयु बढ़ने के साथ-साथ्ज्ञ से अनुभूतियां परिपक्व होकर इच्छाओं, आकांक्षाओं तथा संवेदनाओं के रूप में देखी जाती है।

३. एस्ट्रल बॉडी "सूक्ष्मतम दिव्य स्वरूप"

सभ्यता तथा संस्कृति के परिवेश के अनुरूप यह चेतना किशोरावस्था में विकसित होने लगती है। यौन, अनुभूति, विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण, विचारों का व्यवस्थित क्रम, तर्क शक्ति का विकास, इस चेतन अवस्था की उपलब्धियां है। सामान्यतः इस सीढ़ी तक आकर पेट और प्रजनन की परिधि में चक्कर काटने वाले अधिकांश व्यक्तियों की प्रगति रूक जाती है। शरीरगत अनुभूमियां, भाव संवेदनाएँ तथा व्यवहार कुशलताएँ ये सब मिलकर सामान्य मनुष्य का ढांचा बनाते हैं। चाहे बनवासी आदिम मानव हो या कथित सभय समाज का नागरिक, अधिकांश व्यक्ति इस स्थिति से ऊपर उठा नहीं पाते। इसके बाद की चेतन स्थितियों को प्राप्त करने के लिये साधना करनी पड़ती है।

४. मेन्टल बॉडी "मानसगत चेतन स्वरूप"

इसे प्रतिमा चेतन स्वरूप भी कह सकते है। कवि, कलाकार, मनीषी, वैज्ञानिक, विचारक, इसी भाव लोक में विचरण करते हैं। यह सत्य निर्विवाद है कि जिस राष्ट्र में इस प्रकार के व्यक्तियों की बहुतायत होती है वहां महत्वपूर्ण वैचारिक क्रान्तियां जन्म लेती है। एक से बढ़कर एक विचारक, मनीषी, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक अपनी प्रतिभा से राष्ट्र को आलोकित करते हैं। संसार की समस्त भौतिक उपलब्धियों का श्रेय मानसगत चेतना का ही परिणाम है।

५. स्प्रिचुअल बॉडी "कारणगत चेतन स्वरूप"

उग्र तपस्या एवं कठोर साधनों द्वारा इसका विकास होता है। इस स्तर पर पहुंच जाने पर मनुष्य अपनी अजये संकल्प शक्ति के बल से असम्भव दिखने वाले कार्य कर सकता है। उन्हें ही चमत्कार कहा जाता है। इस स्तर तक पहुंचने वाले मानव को "सिद्ध पुरूष" कहा जाता है। ऐसे सिद्ध लोग भूत, भविष्य और वर्तमान में होने वाली किसी भी घटना को प्रत्यक्ष घटना की तरह देखते है।

६. कास्मिक बॉडी "देव स्वरूप"

मानसिक चेतना की छठी स्थिति आने पर मानव ऋषि, तपस्वी, सन्त, योगी, स्थितप्रज्ञ तत्वदर्शी, आदि नामों से जाना जाता है। जिसका अन्तःकरण वे सत्य से ओतप्रोत हो, जो समाज

को केवल देना ही जानता हो, हर समय जिसे उस विराट प्रकृति की अनुभूति हो, वह मनुष्य "देवता" के नाम से जाना जाता है।

७. बॉडी लेस बॉडी "ब्रह्म स्वरूप"

यह मानवीय चेतना की उच्चतम अवस्था है। इसके विकास होने पर मानव की स्थूल शरीर सम्बन्धी सभी आरम्भिक पर आशक्तियां समाप्त हो जाती हैं। विराट प्रकृति यानि परमात्मा से उसका सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। शरीर का सम्बन्ध ब्रह्म से होने से उसकी स्थिति लगभग ब्रह्म स्तर की हो जाती है। ऐसे व्यक्तियों को "भगवान" के नाम से जाना जाता है। इस अवस्था में पहुंचे हुए मानव की अपनी कोई व्यक्तिगत इच्छा, आकांक्षा नहीं होती। जब समाज अपने प्राकृति मार्ग से भटक कर विनाश की ओर बढ़ने लगता है ब्रह्म स्वरूप मानव जन्म लेकर समाज को दुबारा से प्रकृति के रास्त पर ले जाते है। मानव जाति के इतिहास में ऐसा कई बार हुआ है। भगवान कृष्ण ने गीता द्वारा मानव जाति को यही सन्देश दिया था। उन्होने स्वयं अर्जुन से कहा किः-

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत्।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।।

धर्म संस्थपनार्थाय सम्भावामि युगे युगे।।

अतः जब-जब धर्म का पतन और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं उत्पन्न होता हूँ। सज्जनों की रक्षा तथा दुर्जनो का विनाश करके धर्म स्थापना के लिये मैं हर युग में उत्पन्न होता हूँ।

पूंजीपतियों के लिए जीवन का सही तरीकाः-

अतः अब दैवी, राक्षसी तथा भ्रमित पूंजीवादियों को यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि उनके जीवनयापन करने का एक मात्र तरीका प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवनयापन करना है। उन्हें धंम कमाने की पूरी छूट समाज द्वारा मिलनी चाहिये। परवे अपनें धन का असीमित उत्तराधिकर बच्चों को तथा बाकी धन सारे समाज को दान कर जायें। इसीलिये अथर्ववेद में कहा गया हैः-

ओउम् शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर।

कृतस्य कार्यस्य चेह स्फाति समावह।।

हे मानव तुम स्पै हाथों से कमाओं किन्तु हजारों हाथों से दान भी करो। जो कर्म तुमने किये हैं और जो करने हैं उनको खूब बढ़ाओं।

किन्तु दान भी किसी आनजाने व्यक्ति तथा संस्था को नहीं करना चाहिये। उनकी खूब जांच, पड़ताल करके देना चाहिये। आजकल ऐसे फरेवी, मक्कार, धूर्त तथा निकम्मे व्यक्ति एवं संस्थायें समाज में बहुतायत से हैं जो समाज सेवा करने का ढोंग करते हैं। अतः यदि दान के लिये सुपात्र आसानी से नहीं मिले तो पूंजीपतियों को अपना धन समाज के बच्चों की शिक्षा दीक्षा, चिकित्सा पर अथवा ईमानदार तथा मेहनती परन्तु किन्ही कारणों से बेरोजगार नवयुवक नवयुवतियों को रोजगार के साधन उपलब्ध कराने पर खर्च करना चाहिये। इसीलिये भगवान वासुदेव श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि :-

दातव्यमिति यद्धान दीयतेऽनुपकारिणे।

देशे काले च पात्रे च तद्धान्त सात्विर्कग्मसं मम।।

वही दान सात्विक होता है जो देश काल और पात्र का विचार करके कर्तव्य वृद्धि में प्रत्युपकार को भाव लाये बना दिया जाता है।

समान अधिकार के गलत दर्शन के कारण समाज में मूर्खो के अनुपात में वृद्धिः- समाज अधिकार के गलत दर्शन के कारण ही सम्पत्ति के व्यक्तिगत उत्तराधिकार तथा इसके फलस्वरूप सीमाहीन धन संचय की कुप्रवृति समाज में बढ़ी। फिर सम्पत्ति को बलपूर्वक अधिकार में करने की भावना के कारण समाज में लड़ाई झगड़े खून खराबा होने लगा। इसे रोकने के लिए राज्य नामक संस्था बनाई गई - उसने कानून तथा व्यवस्था बनाने के लिए पुलिस तथा सेना का गठन किया।

पुलिस तथा सेना में समाज के श्रेष्ठ पुरूषों को भर्ती किया गया, वे अपने बच्चों से दूर रहकर कार्य करते हैं। फलस्वरूप उनके बच्चों की परवरिश ठीक से नहीं हो पाई। परिणामस्वरूप की सन्तानों की परवरिश न होने के कारण योग्य माँ-बाप की संतानो को अयोग्य बनाने का यह सिलसिला (गोरखधन्धा) प्राचीनकाल से अब तक चल रहा है। फलस्वरूप अब समाज में मूर्खो की भरमार हो गई है। इसके दुष्प्रभाव निम्न हैं:-

मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समान अधिकार के दर्शन के दुष्प्रभाव

मानव जीवन के अनेको क्षेंत्रों में समान अधिकार पर आधारित सम्पत्ति के असीमित व्यक्तिगत उत्तराधिकार के दर्शन का दुष्प्रभाव व्याप्त है। इस छोटी सी पुस्तक का उद्देश्य तो मानव जाति को इस दिशा की ओर संकेत भर देना है। अब यह स्पष्ट है कि सम्पत्ति के असीमित व्यक्तिगत उत्तराधिकार के गलत दर्शन के कारण ही सीमाहीन धनसंचय की भावना पैदा होती है। ऐसा धन जिसे मानव खुद के उपयोग मे न लाकर आने वाली पीढ़ियों के ऐशा-आराम के लिये छोड जाता हैं, समाज में हजारों प्रकार की बुराईयां पैदा करता है।

प्राकृति राक्षसी पूंजीवाद ने समाज का सारा ढांचा ही उलटा खड़ा किया हुआ है। समान अधिकार के गलत दर्शन पर आधारित इस कटु सत्य की विस्तार से विवेचना प्राकृतिक दर्शन के निम्न आयामों में है।

प्राकृति दर्शन के अन्य आयामों में निम्न विषयों की विवेचना की गई है।

तीसरे आयाम में एक निष्ट विवाह के गलत आधार को स्पष्ट किया गया है।

चौथे आयाम में अहिंसा, दया, विनय, नम्रता आदि नैतिक मूल्यों की कलई खोल दी है। सही नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिये "प्राकृतिक आन्दोलन" की स्थापना की गई है।

पांचवे आयाम में लोकतंत्र के गलत दर्शन के स्थान पर "योग्यतंत्र" को मान्यता दी गई है।

छठे आयाम में नारी मुक्ति आन्दोलन में राक्षसी पूंजीवादियों की चालबाजी स्पष्ट की गई है, साम्यवाद तथा समाजवाद जैसे लोक लुभावन परन्तु कालान्तर में समाज को निकम्मा बना देने वाले दर्शन की ढोल की पोल खोल दी है।

वर्तमान भ्रष्ट दर्शनों के कारण समलैंगिक व्यभिचार को जो कानूनी स्वरूप प्राप्त हो रहा है उसे रोकने के उपाय बताये गये है।

सातवे आयाम में सही दर्शन के आधार पर समाज रचना करने की योजना दी है। इसे "व्यवस्था परिवर्तन" के नाम से जाना जाता है।

यदि समय रहते इन सभी दार्शनिक गल्तियों को सुधार कर समाज की रचना प्रकृति के सिद्धान्तों के आधार पर नहीं की गई तो समाज में रहने वाल सभी मानवों के दुख बढ़ते ही जावेगें। अतः सभी ज्ञानी जन, समाज सेवक, हमारी चेतावनी पर गम्भीरतापूर्वक मनन करें व प्राकृतिक के दर्शन के अन्य खण्डों में इन सभी बातों की चर्चा की जायेगी।

परिवर्तन संसार का नियम है तथा उसकी बेहतरी के लिए आवश्यक एवं अपेक्षित भी । श्री संसारचंद्र की यह देन पुरातन व आधुनिक सोच के सम्मिश्रण से उपजा नया दर्शन है।

संसारचंद्र जी

सरल विशलेषण पढ़कर ज्ञान प्राप्त हुआ आप अभिनन्दन के पात्र है।

व्यवस्था परिवर्तन के लिए सम्पत्ति के असीमित उत्तराधिकार की जो व्याख्या प्राकृतिक दर्शन में लिखी है वह व्यावहारिक है तथा समाजिक रूप से अत्यंत सारगर्भित लगती है।

कमल टावरी, पूर्व सचिव

भारत सरकार

४ मई, २०१०

ऋषिकेश

भारत

लेखक परिचय

संसारचंद्र राजस्थान प्रदेश मे जन्मे पर वसुधैव कुटुम्बकम में विश्वास करते हैं, वे जुझारू एवं संघर्षशील योद्धा हैं।

उनका कहना है कि मेरा कार्य ही मेरा परिचय है।